देश-विदेश

पुस्तिका - छः

लेखक
राम प्रकाश अनन्त

बेलगाम भ्रष्टाचार

कौन है इसका जिम्मेदार?

अनुक्रमणिका

लेखक की ओर से	3
बेलगाम भ्रष्टाचार	5
काला धन	37
भ्रष्टाचार और कानून	42
भ्रष्टाचार के कारण	45
नैतिक व सामाजिक मूल्य और भ्रष्टाचार	49
हाल ही में हुए भ्रष्टाचार विरोधी आन्दोलन	53
भ्रष्टाचार और उसका समाधान	61

लेखक की ओर से...

पिछले तीन साल में इतने अधिक भ्रष्टाचार हुए हैं कि गिनना मुश्किल है। एक तरफ शासन-प्रशासन में भ्रष्टाचार के नाम पर लूट मची हुई है तो दूसरी तरफ राज्य व्यवस्था जनता को दी जाने वाली तमाम सहूलियतों में कटौती करती जा रही है। यह दुनिया भर के लिए मंदी का दौर रहा है। यूनान और स्पेन की अर्थव्यवस्थाएँ पूरी तरह ढह गयीं। इस महामंदी का असर भी पूरी दुनिया पर पड़ा है। किसी भी देश की अर्थव्यवस्था जब कठिनाई के दौर से गुजरती है तो उस देश की जनता, विशेषकर निचला तबका उससे बहुत प्रभावित होता है। इतना ही नहीं वैश्वीकरण के इस दौर में बड़ी अर्थव्यवस्था वाला कोई देश संकट से गुजर रहा होता है तो उसका असर भी दुनिया के दूसरे देशों में पड़ता ही है। संकट के दौर में जब आम आदमी का जीवन बद से बदतर होता जा रहा है ऐसे में उसके अन्दर आक्रोश पनपना स्वाभाविक ही है। ऐसे समय में कुछ लोगों ने लोकपाल बनाने की माँग की तो लोग उनसे आसानी से जुड़ गये। यूँ भ्रष्टाचार कोई नयी बात नहीं है, फिर भी जब केजरीवाल ने इसे मुद्दा बनाया और लोकपाल कानून बनाने की बात की तो उन्हें जनता का समर्थन मिला। इस तरह पिछले तीन साल से समाज में भ्रष्टाचार चर्चा का विषय बन गया है।

पिछले तीन साल से भ्रष्टाचार पर बात हो रही है। अन्ना हजारे, रामदेव, केजरीवाल और उनकी टीम लगातार इस मुद्दे पर जनता के बीच मुखर रही है। लेकिन अपनी संकीर्ण समझ और निजी महत्त्वाकांक्षाओं के चलते उन्होंने जनता में इस मुद्दे पर भ्रम बनाए रखा। अगर किसी समस्या के कारणों का गहराई से विश्लेषण करने के बजाय उसके सतही कारणों को ही बढ़ा-चढ़ा कर पेश किया जायेगा तो उसका समाधान भी सतही सुधारों तक ही सीमित रहेगा। भ्रष्टाचार विरोधी आन्दोलन के झण्डाबरदारों ने अपना निशाना गलत जगह साधा। इसकी जड़ों पर प्रहार करने और स्थायी समाधान तक बढ़ने की न तो उनकी सोच रही है और न ही मंशा। दरअसल भ्रष्टाचार इस व्यवस्था के रग-रग में व्याप्त है। इस मुद्दे पर विस्तार और गहराई से विचार करने के क्रम में ही यह रचना सामने आयी है।

मेरे लेखन की शुरुआत कहानी व कविता से हुई और 2003 तक मैं इन्हीं विधाओं में लिखता रहा। उसके बाद लम्बे समय से मैं समयांतर व फिलहाल के लिए समसामायिक

विषयों पर वैचारिक लेखन करता रहा हूँ। इन पत्रिकाओं के सम्पादकों को मेरे लेख पसंद आये और वे उसे पत्रिका में स्थान देते रहे। इससे मेरी वैचारिक लेखनी के लिए ऊर्जा सतत प्रवाहित रही। मैं इस सामयिक और वैचारिक विषय पर अपनी इस प्रथम रचना को पंकज बिष्ट व प्रीति सिन्हा को समर्पित करता हूँ।

किसी भी सामाजिक विषय पर सही समझदारी तक पहुँचने के लिए सिद्धान्त व समाज दोनों की समझ महत्त्वपूर्ण होती है। मेडिकल कॉलेज की पढ़ाई व आगे के कैरियर का दबाव रचनात्मकता में तो बाधक होता ही है, वह छात्रों को सामाजिकता से भी काट देता है। ऐसे माहौल में अगर मेरे अंदर कुछ रचनात्मकता बनी रही तो उसके लिए उन मित्रों का योगदान अविस्मरणीय है, जिन्होंने वहाँ बहस-मुबाहिसे का एक अच्छा माहौल बनाये रखा, जिनके साथ बैठकर समाज को बेहतर तरीके से समझने के लिए देर रात चर्चाएँ हुआ करती थीं। विशेषकर मैं अपने मित्र अमित, सूर्य प्रकाश व यशोवर्धन सिंह का आभारी हूँ। मैं देश-विदेश पत्रिका के साथियों का भी आभारी हूँ कि उन्होंने इसे प्रकाशन योग्य समझा व इसके प्रकाशन की व्यवस्था की। पाठकों की प्रतिक्रिया, सुझाव और सलाह की प्रतीक्षा रहेगी।

-राम प्रकाश अनन्त

बेलगाम भ्रष्टाचार

आज समाज का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है जो भ्रष्टाचार से अछूता हो। भ्रष्टाचार को उसके शाब्दिक अर्थ, भ्रष्ट आचरण (आचार) जैसे व्यापक अर्थ में न लेकर हम यहाँ उसके आर्थिक पहलू तक सीमित रह कर विचार करेंगे। दरअसल आर्थिक पहलू से जुड़ा भ्रष्टाचार ही इतना व्यापक है कि सम्पूर्णता में उस पर विचार करना कठिन मालूम होता है। इसलिए हम यहाँ केवल उन क्षेत्रों का जिक्र करेंगे जिनसे आम जन-जीवन बुरी तरह प्रभावित होता है अथवा मेहनतकश जनता की गाढ़ी कमाई को भ्रष्ट लोग हड़प कर अय्याशी करते हैं। यहाँ हम निम्नलिखित क्षेत्रों में व्याप्त भ्रष्टाचार पर विचार करेंगे -

1. **आद्यौगिक अथवा कॉरपोरेट भ्रष्टाचार**
2. **सरकारी संस्थाओं में व्याप्त भ्रष्टाचार**
3. **राजनीतिक भ्रष्टाचार**
4. **गैर सरकारी संगठनों (एनजीओ) का भ्रष्टाचार**
5. **न्याय पालिका में भ्रष्टाचार**
6. **धार्मिक क्षेत्र का भ्रष्टाचार**
7. **मीडिया में भ्रष्टाचार**
8. **सेना में भ्रष्टाचार**
9. **क्रिकेट में भ्रष्टाचार**

औद्यौगिक अथवा कॉरपोरेट भ्रष्टाचार

देश में आजादी के बाद पूँजीपतियों की सम्पत्ति तेजी से बढ़ी है। स्थिति यह है कि कुल 100 लोगों के पास देश की 25 प्रतिशत सम्पत्ति है। लगातार पूँजीपतियों की सम्पत्ति बढ़ने के कई कारण हैं। पहली बात तो यही है कि उद्योगपति मजदूरों का भारी शोषण करते हैं। सारे कानून पूँजीपतियों के मुनाफे को ध्यान में रखकर ही बनाये जाते हैं और वे मजदूरों के शोषण में सहायक होते हैं। कम्पनियों का एक सूत्रीय कार्यक्रम होता है कारोबार बढ़ाना। इसके लिए उन्हें जो भी करना जरूरी लगता है, वह करती हैं। भ्रष्ट से भ्रष्ट तरीका अपनाना पड़े, तो अपनाती हैं।

इस दौर का सबसे चर्चित घोटाला 2जी स्पेक्ट्रम रहा है। 1.7 लाख करोड़ रुपये घोटाले के मुजरिम ए राजा को, जो दूर संचार मंत्री थे, कुछ दिन जेल में भी गुजारने पड़े पर टेलीकॉम कम्पनियों का कुछ नहीं हुआ। घोटाला अकेले राजा ने तो किया नहीं था।

घोटाला दूर संचार मंत्री व कम्पनियों ने मिल कर ही किया था। कम्पनियाँ घोटाले करें, खुलेआम लूटें, लेकिन उनका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता।

निश्चय ही यह बहुत बड़ा घोटाला है, लेकिन टेलीकॉम कम्पनियाँ तो हर रोज ही करोड़ों का घोटाला कर रही हैं। टाटा डोकोमो ने एक दिन मेरे 110 रुपये काट लिये, यह कह कर कि मैंने वालपेपर डाउनलोड किये हैं। मैंने कस्टमर केयर पर बात की तो उसने 35 रुपये वापस किये। बोला- ''इससे अधिक पैसे वापस करने का नियम नहीं है।'' यह कैसा बेहूदा नियम है कि आप बेवजह किसी के 110 रुपये काट लें और उसमें से केवल 35 रुपये वापस करें। अगर आपने गलती से कोई सेवा शुरू कर दी तो उसे शुरू होने में सेकण्ड भर लगेगा, लेकिन बंद कराने के लिए आपको महीनों लग जाएँगे और आपके पैसे कटते रहेंगे। आपके नम्बर पर बिना पूछे कभी-कभी कोई टोन लगायी जा सकती है और आपके पैसे काटे जा सकते हैं। आप अपना फोन रिचार्ज कराएँ और चौबीस घंटे में आपके पैसे ही उड़ जाएँ, क्योंकि वह रिचार्ज 24 घंटे के लिए ही था और यह बात आपको स्पष्ट रूप से बतायी नहीं गयी थी। पाँच-छः साल पहले जब मैं दिल्ली में था तो वोडाफोन वाला एक पोस्टपेड कनेक्शन झूठी बातें बोलकर थमा गया और 400-500 रुपये (इसी के आसपास रहे होंगे) ले गया। जब कम्पनी की तरफ से मुझसे जानकारी हासिल करने के लिए फोन आया, तो मैंने उससे कहा कि उसने मुझे ठगा है तो उसका बेशर्मी भरा जबाब था - ''कम्पनी हमें इसीलिए यहाँ बिठाती है।'' आप कहेंगे कहाँ 2जी स्पेक्ट्रम महा घोटाला और कहाँ कम्पनियों की ये छोटी-मोटी बदमाशियाँ। देश में साठ करोड़ मोबाइल धारक बताये जाते हैं। हर मोबाइल उपभोक्ता इस तरह की परेशानियों का सामना करता है। इस तरह ये छोटी-मोटी बदमाशियाँ हजारों करोड़ रुपये के गुपचुप घोटाले का रूप धारण कर लेती हैं। आप सोच भी नहीं सकते कि त्यौहार के दिनों में कम्पनियाँ एसएमएस के पैसे बढ़ाकर एक दिन में अवैध रूप से 200 करोड़ रुपये वसूल लेती हैं। आप कहेंगे इसके लिए सरकार ने ट्राई (दूर संचार नियामक प्राधिकरण) बना रखी है। उपभोक्ता फोरम है, अदालतें हैं। दरअसल ये सब कॉरपोरेट भ्रष्टाचार के लिए धोखे की टट्टी हैं। ये उनके भ्रष्टाचार को रोकने के लिए नहीं, बल्कि रोकने का दिखावा करने के लिए हैं।

मोबाइल कम्पनी ही नहीं, कोई भी कम्पनी जो इस तरह का व्यवसाय कर रहीं है, वह हजार तरह के भ्रष्ट तरीके अपनाकर लूट मचाये हुए है। इसके लिए वह किसी भी हद तक जा सकती है।

सन 1998 में दिल्ली में महामारी ड्रॉप्सी फैली। इसमें लगभग 60 लोगों की मौत हुई और 3000 लोग प्रभावित हुए। दिल्ली के बाद ग्वालियर, कन्नौज और लखनऊ में भी ड्रॉप्सी फैली। ध्यान देने की बात है कि ड्रॉप्सी प्लेग या कॉलरा (हैजा) की तरह एक-दूसरे से फैलने वाला रोग नहीं है। यह सरसों के तेल में आर्जिमोन नाम के खरपतवार के बीज मिल जाने से फैलती है। पहले पूरी दिल्ली में एक साथ ड्रॉप्सी का फैलना और

फिर लगातार देश भर में जहाँ-तहाँ ड्रॉप्सी का फैलना एक बड़ा सवाल तो पैदा करता ही है। इससे हुआ यह कि कुछ समय तक खुले सरसों के तेल की बिक्री बहुत कम हो गयी और कम्पनियों के रिफाइंड व बोतल बंद तेल की बिक्री अचानक बढ़ गयी। गाँवों में जहाँ देशी घी के बाद लोग सरसों का तेल ही प्रयोग करते थे वहाँ रसोई में अब लोग रिफाइंड प्रयोग करने लगे हैं।

2009 में दुनिया भर में स्वाइन फ्लू का जो खौफ पैदा हुआ था उसे हम अभी भूले नहीं होंगे। इसे शताब्दी का सबसे बड़ा घोटाला कहा जा रहा है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के डॉक्टरों ने स्वाइन फ्लू का हौवा खड़ा किया, फिर उसे विश्वव्यापी घोषित किया, जबकि यह विश्वव्यापी नहीं था। इसके बदले वैज्ञानिकों ने दवा कम्पनियों से मोटा पैसा लिया। ब्रिटेन की दवा कम्पनी ग्लैक्सोस्मिथ की अगुआई में दवा कम्पनियों ने लिन स्वाइन फ्लू को विश्वव्यापी महामारी घोषित कराया और टेमिफ्लू जैसी दवाएँ व वैक्सीन बेच कर अरबों डॉलर की चाँदी काटी। हॉलैण्ड के प्रोफेसर ऑस्टरहास जो विश्व स्वास्थ्य संगठन स्वाइन फ्लू के मुख्य सलाहकार थे उनकी अन्तरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त प्रयोगशाला खुद वैक्सीन बनाती है। ब्रिटिश पत्रिका साइंस एण्ड आस्टरहास के आर्थिक हितों पर लिखा। उसके बाद पूरे यूरोप के मीडिया में यह काण्ड छा गया। आनन-फानन में विश्व स्वास्थ्य संगठन ने वैक्सीन की सिफारिस की, जबकि वैक्सीन पूरी तरह सुरक्षित नहीं थी और बाद में लोगों को इसके दुष्परिणाम भुगतने पड़े। अमेरिका में डॉक्टर व नर्सों ने वैक्सीन लगवाने से इनकार कर दिया था। इस पूरे घोटाले में दवा कम्पनियों ने अरबों डॉलर कमाये।

कम्पनियों को लूट की सुविधाएँ मिली हैं उनमें एक सुविधा है उन्हें अपने धंधे के लिए लगभग मुफ्त में जमीन उपलब्ध कराना। देश भर में सरकारी जमीनें मामूली सी लीज पर सरकार कम्पनियों को उपलब्ध कराती हैं। दिल्ली में अरबों की जमीन सरकार ने कॉरपोरेट अस्पतालों को दे रखी है कि वे मुनाफे की भारी कमाई के साथ-साथ कुछ गरीब लोगों का भी इलाज करेंगे। दशकों से ये सरकारी जमीन पर बने अस्पताल अच्छा मुनाफा कमा रहे हैं, जबकि किसी गरीब का मुफ्त इलाज करना तो दूर ये इलाज में छूट तक नहीं देते। कुछ समय पहले सुप्रीम कोर्ट ने भी उन्हें ऐसे आदेश दिये थे, पर इस देश में कॉरपोरेट के आगे शासन-प्रशासन या न्यायालय की चलती ही कहाँ है। सरकारी जमीन ही नहीं किसान व आदिवासियों की जमीनें भी सरकार औने-पौने दामों में कॉरपोरेट को दिलवाने में लगी हैं। पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, छत्तीसगढ़ और देश के कई राज्यों में इसके खिलाफ जनता का जबरदस्त प्रतिरोध हम देख ही रहे हैं। साथ ही सरकार का दमन भी हम देख रहे हैं।

मजदूरों के शोषण के अतिरिक्त कम्पनियों के पास अपनी दौलत बढ़ाने के जो सबसे बड़े जरिये हैं उनमें से एक है आयकर की चोरी। कॉरपोरेट कम्पनियाँ ही नहीं पूरा उच्च वर्ग जिनमें फिल्म उद्योग, छोटे धंधे चलाने वाले, छोटे पूँजीपति भी शामिल हैं, आयकर की चोरी करते हैं और महज दिखाने भर के लिए कम से कम आय कर भरते हैं। दरअसल

राज्य व्यवस्था ने नियमों में इतने सुराख छोड़ रखे हैं कि (जैसे फॉर्म जी-80 के अंतर्गत) कम्पनियाँ टैक्स बचा लेती हैं। आधारभूत ढाँचे में सरकार तमाम रियायतें देती है। कम्पनियाँ विकास कार्य व अनुसंधान के नाम पर भी छूट पा जाती हैं। राज्य व्यवस्था के बनाये हुए तमाम नियम कानूनों का सहारा लेकर तमाम कम्पनियाँ बिलकुल टैक्स नहीं देतीं। 1996 में वित्त मंत्रालय ने एक अध्ययन कराया जिसमें पता चला कि बॉम्बे स्टॉक एक्सचेंज की ऊपर की 1500 में से 1047 कम्पनियों ने 14,040 करोड़ रुपये का मुनाफा कमाया, लेकिन एक पैसा भी टैक्स नहीं दिया। (आस्पेक्ट ऑफ इंडियन इकोनोमी, रूपे, अंक 25 पृष्ठ-47।)

सरकारें किस तरह टैक्स चोरी को बढ़ावा देती हैं और काले धन को सफेद करवाती हैं इसका सबसे अच्छा उदाहरण स्वैच्छिक आय घोषणा योजना है। यह योजना संप्रग सरकार के वित्तमंत्री पी चिदम्बरम ने 31 दिसम्बर 1997 को शुरू की थी। इस योजना के तहत धनी व पूँजीपति अपनी सम्पत्ति की स्वैच्छिक घोषणा कर सकते थे जिस पर बिना किसी सवाल-जबाब के थोड़ा सा टैक्स लगना था। इस योजना में जो सम्पत्ति (काला धन) घोषित की गयी, उस पर सरकार ने कुल टैक्स 10,500 करोड़ रुपये वसूल किये। इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेंट अहमदाबाद के प्रो. बकुल एच ढोलकिया के अनुसार स्वैच्छिक आय घोषणा योजना-97 के तहत घोषित कुल सम्पत्ति का मूल्य मौजूदा दरों के अनुसार 1,22,100 करोड़ रुपये था। मतलब सरकार ने टैक्स के रूप में कुल 8.2 प्रतिशत टैक्स वसूला।

उसके बाद जब राजग यानी भाजपा सत्ता में आयी, तो उसने कर चोरी में पकड़े गये लोगों को जेल भेजने के बजाए उनके लिये कर विवाद समाधान नाम की योजना लागू की। इस योजना के अंतर्गत आयकर अधिकारियों द्वारा पकड़े गये लोगों को छापे में बरामद धन का सिर्फ पचास प्रतिशत सरकार को देना था।

दरअसल कितने तरीकों से भ्रष्टाचार को शिष्टाचार में बदला जाता है, यह हरि अनंत हरि कथा अनंत हैं। स्थिति यहाँ तक आ गयी है कि कॉरपोरेट मीडिया में भी अब ऐसे शब्दों का प्रचलन होने लगा है - खनन माफिया, रियल एस्टेट माफिया, शिक्षा माफिया। सच में पूँजीपति घरानों ने माफिया का रूप धारण कर लिया है।

कॉरपोरेट दलाली यानी लॉबिंग

यूँ तो 2जी स्पेक्ट्रम दूसरे घोटालों की तरह ही एक घोटाला था। जिसमें घोटाले की राशि अब तक हुए सभी घोटालों से अधिक थी। इस घोटाले का सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू यह है कि इसमें कॉरपोरेट दलाल नीरा राडिया का नाम खुल कर सामने आया। ऐसे लोग पहले भी पूँजीपतियों के हितों में काम करते रहे हैं परन्तु अभी तक अधिकारिक तौर पर कोई मामला इस तरह खुल कर सामने नहीं आया। जब वीरेन्द्र सहवाग खराब फार्म से

जूझ रहे थे, तब ऐसी खबरें आयी थीं कि वे कम्पनियाँ सहवाग के लिए लॉबिंग कर रही हैं जिनका वे विज्ञापन करते हैं। कुछ समय पहले दीपक तलवार ने यह माना था कि वह कोका कोला के लिए सरकार व नौकरशाहों के बीच लॉबिंग करता है।

2जी स्पेक्ट्रम घोटाले में ए राजा के अलावा जो सबसे चर्चित नाम है वह नीरा राडिया है। नीरा राडिया सरकार व नौकरशाहों के बीच कॉरपोरेट घरानों की साँठ-गाँठ का धंधा करती थी और उसने बाकायदा दलालों के दफ्तर खोल रखे थे, जिन्हें वह जन सम्पर्क कम्पनी कहती थी। उसकी इस तथाकथित जन सम्पर्क कम्पनी नोएसिस में 1966 बैच का आईएएस ट्राई (दूर संचार नियामक प्रधिकरण) का पूर्व प्रमुख प्रदीप बैजल भी काम करता था जिसका 2जी स्पेक्ट्रम घोटाले में नाम आया है। नीरा राडिया टाटा घराने के लिए भी दलाली (लॉबिंग) करती थी। टाटा घराना इसके लिए उसे सालाना 60 करोड़ रुपये देता था। (हिंदुस्तान 17.12.10)

2जी स्पेक्ट्रम घोटाले में नीरा राडिया की केंद्रीय भूमिका रही है। 2जी स्पेक्ट्रम घोटाले में यह बात खुलकर सामने आ गयी है कि कम्पनियाँ दलालों के माध्यम से कैसे नौकरशाही व सरकार में अपनी पैठ बनाती हैं और अपने काम निकालने के लिए किस-किस तरह के भ्रष्ट तरीके इस्तेमाल करती हैं। कुछ समय पहले ही जनरल वीके सिंह ने इस बात का खुलासा किया है कि टाट्रा ट्रकों की खरीद में एक कम्पनी ने एक पूर्व जनरल के माध्यम से उन्हें 1500 करोड़ रुपये की रिश्वत की पेशकश की थी। उसने वीके सिंह से कहा था कि अगर आप यह रिश्वत नहीं लेंगे, तो ऐसा नहीं है कि सेना में रिश्वत खत्म हो जाएगी। आपसे पहले भी लोग रिश्वत लेते थे और आगे भी लेंगे।

यह मानना ठीक नहीं कि दूर संचार कम्पनियाँ या ट्रक बनाने वाली कम्पनियाँ ही अपने दलाल रखती हैं और उनसे भ्रष्टाचार का हर हथकंडा अपनाकर अपने उत्पाद भेड़ती हैं और मुनाफा कमाती हैं, बल्कि सच यह है कि संयोग से ये दो मामले प्रकाश में आ गये हैं। वरना पूरे कॉरपोरेट जगत की मूल स्थिति यही है। इसलिए 2जी स्पेक्ट्रम घोटाले में सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू था नीरा राडिया द्वारा चलाये जा रहे दलाली के दफ्तरों की कॉरपोरेट सेक्टर में भूमिका का खुलकर सामने आना। हालाँकि यह कोई छिपी हुई बात नहीं थी, परन्तु आधिकारिक तौर पर इसके खुलकर सामने आने के कई दूरगामी परिणाम होंगे, जैसे- मीडिया ने नीरा राडिया को पहले कॉरपोरेट दलाल के नाम से ही सम्बोधित किया, लेकिन बाद में वह उसे कॉरपोरेट लॉबिस्ट कहने लगा। यानी पूँजीपति समाज में यह स्थापित करने में सफल हो जाएगा कि वह अपने दलालों के माध्यम से सरकार प्रशासन में जो भ्रष्ट तरीके अपनाता है वह कॉरपोरेट लॉबिंग है। दलाल जो काम करता है वही लॉबिस्ट करता है, परन्तु दलाल शब्द से जो घृणा का भाव झलकता है, लॉबिस्ट शब्द में वह भाव छिप जायेगा। दरअसल लॉबिंग अमरीका व ब्रिटेन सहित कई यूरोपियन देशों में जायज (वैध) है और उसके लिए कानून बने हुए हैं। भारत में लॉबिंग न वैध है

न अवैध है। न तो लॉबिंग रोकने के लिए कोई कानून है और न ही उसे वैधानिक दर्जा देने के लिए कोई नियम-कानून है। बस कॉरपोरेट कम्पनियाँ, राज्य व्यवस्था के साथ अपनी समझदारी के हिसाब से भ्रष्ट हथकंडों का अपना अपार साम्राज्य फैलाये हुए हैं। नीरा राडिया के रूप में जब दलाली का यह धंधा सामने आया ही है, तो बहुत सम्भव है कि सरकार लॉबिंग नाम से इसे कानूनी दर्जा दे ही दे।

जब देश भर में नीरा राडिया की दलाली का हंगामा मचा था और नेताओं, उद्योगपतियों व पत्रकारों के साथ उसकी टेप की हुई बातचीत के स्वर दिगदिगंत में गूँज रहे थे, ऐसे समय में कम्पनी मामलों के मंत्री सलमान खुर्शीद का जो बयान आया, वह इसी ओर संकेत करता है कि आने वाले समय में लॉबिंग वैधानिक हो जाएगी। उन्होंने 14 दिसम्बर 2010 को इंडिया कॉरपोरेट वीक के अवसर पर कहा कि अगर आप लॉबिंग या जनसम्पर्क की बात करते हैं, तो ये क्षेत्र भी हमारे लोकतांत्रिक ढाँचे का अंग ही हैं। इनका अवैध इस्तेमाल या कॉरपोरेट गवर्नेन्स को बिगाड़ने में इनका उपयोग किया जाता है, तो निश्चित रूप से हमें इस पर गौर करना होगा।

मतलब साफ है कि आने वाले समय में कॉरपोरेट की दलाली के हथकंडों को वैधानिक तौर पर लोकतांत्रिक ढाँचे का अंग बनाया जा सकता है और कानून के नाम पर कुछ ऐसे रास्ते बनाये जा सकते हैं जिनसे होकर राडिया जैसे दलाल आसानी से निकल जाते।

कॉरपोरेट दलाल यानी लॉबिस्ट का काम होता है, सरकार व नौकरशाहों को खरीद कर अपने हित में नियम-कानून बनवाना, नियम-कानूनों को ताक पर रखकर अपनी फाइलें आगे बढ़वाना, सरकारी संसाधनों की लूट-खसोट में कम्पनियों का सहयोग करना, मीडिया में कम्पनी व उसके मालिक की छवि चमकाना, इत्यादि। यह बिना वजह नहीं है कि राडिया का मामला प्रकाश मे आते ही टाटा ने बयान दिया कि उनसे भी 15 करोड़ की रिश्वत माँगी गयी थी। मीडिया ने इस बयान को हाथों-हाथ लिया, जो अखबारों में पहले पृष्ठ की सबसे बड़ी खबर थी। टाटा जैसे महापुरुष से रिश्वत माँगी गयी, ऐसे कैसे उद्योगों का विकास हो सकता है। जिन कॉरपोरेट का अपना मीडिया नहीं है, वे मीडिया को मैनेज करने के लिए राशि खर्च करते हैं।

खुर्शीद सही कह रहे हैं कि लॉबिंग लोकतांत्रिक ढाँचे का अंग ही है। दरअसल कम्पनी और कम्पनी मामलों के मंत्री के लिए लोकतंत्र का अर्थ पूँजीपतियों द्वारा अधिक से अधिक कम्पनी खोलना और फिर उनके उत्पाद से अधिक से अधिक मुनाफा कमाना है। ऐसे में यह स्वाभाविक ही है कि एक कम्पनी दूसरी कम्पनी से ज्यादा मुनाफा कमाने के लिए दलाली जैसे हथकंडे अपनाएँ। वस्तुतः दलाली या लॉबिंग कॉरपोरेट जगत का अपना अंतर्विरोध है और पूँजीवादी विकास के साथ उसका लोकतांत्रिक ढाँचे का अंग बनना स्वाभाविक बात है। इसलिए अमरीका और यूरोपीय संघ जैसे विकसित पूँजीवादी देशों में लॉबिंग वैधानिक रूप से लोकतांत्रिक ढाँचे का अंग बन गयी जबकि भारत जैसे

विकासशील देश में उसे वैधानिक रूप से लोकतांत्रिक ढाँचे का अंग बनने में अभी कुछ समय और लगेगा।

लॉबिंग यानी कॉरपोरेट दलाली को और अच्छी तरह समझने के लिए हम यहाँ कुछ उदाहरण लेते हैं। दवा कम्पनियाँ एक ही दवा को अलग-अलग नामों से बनाती हैं। जैसे पैरासिटामोल एक दवा का नाम है, इसे ग्लैक्सो स्मिथक्लिन क्रोसिन नाम से बेचती है। ग्लैक्सो नाम की कम्पनी कालपोल के नाम से बेचती है। ऐसे ही पचासों कम्पनियाँ हैं जो पैरासिटामोल नाम की बुखार की दवा को अपने-अपने नामों से बेचती हैं। हर कम्पनी यह चाहती है कि उसके उत्पाद की भारी बिक्री हो और वह भारी मुनाफा कमाये। इसके लिए वह जो भी आवश्यक होगा, करेगी। बहुत से लोग सोच सकते हैं कि आखिर अपनी दवा बेचने के लिए कम्पनी क्या करेगी, यही कि एमआर (मेडिकल रिप्रजेंटेटिव) के माध्यम से वह डॉक्टरों को लालच देकर उन्हें अपनी दवा लिखने के लिए प्रेरित करेगी। दवा कम्पनियों के लिए अपना मुनाफा बढ़ाने का यह एक तरीका है जिसे हर कोई जानता है। लेकिन ऐसे जाने कितने भ्रष्ट तरीके हैं, जो दवा कम्पनियाँ (दवा कम्पनी ही नहीं हर कम्पनी) अपना मुनाफा बढ़ाने के लिए अपनाती हैं।

एक बार मैं मुख्यचिकित्साधिकारी कार्यालय में मीटिंग में था। कुछ चिकित्साधिकारियों ने शिकायत की कि उनके यहाँ तीन महीने से पैरासिटामोल (बुखार उतारने की दवा) नहीं है। इस पर मुख्य चिकित्साधिकारी ने कहा कि मैं क्या कर सकता हूँ? मैं पैरासिटामोल की डिमांड भेजता हूँ, ऊपर से बिटाडिन की बोतलें भेज देते हैं।

व्यवस्था यह है कि जिले के अस्पताल, जिला डिस्पेंसरी के लिए अपनी जरूरत के हिसाब से माँगपत्र भेजें और उसी के अनुसार हर जिले से माँगपत्र ऊपर महानिदेशक के पास जायें। जो दवाएँ खरीदी जायें वे इसी वास्तविक माँग के अनुसार खरीदी जायें। लेकिन वास्तविकता में जो होता है वह बिलकुल उल्टा है। ऊपर से तमाम ऐसी दवाएँ खरीदी जाती हैं जिनका उपयोग बहुत कम है और अनावश्यक है। उन्हें जिला डिस्पेंसरी और वहाँ से प्राथमिक व सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्रों पर जबर्दस्ती ठेल दिया जाता है। फिर फर्जी तरीके से ये दवाएँ कंडम की जाती हैं। जैसे एक दवा है डाइ इथाइल कार्बामेजाइन। यह दवा फाइलेरियासिस में उपयोग की जाती है। कुछ स्थानों को छोड़कर यह बीमारी सामान्यतः बहुत कम पायी जाती है। कुछ समय पहले उत्तर प्रदेश के सरकारी अस्पतालों में यह दवा बहुतायत से भेजी गयी है। जाहिर है कि यह दवा उत्तर प्रदेश में फर्जी तरीके से खपायी जा रही है। ऐसे ही जब मैं उत्तराखंड सरकार की सेवा में था तो मैंने देखा कि वहाँ फेनिरामिन (बाजार में एविल के नाम से भी मिलती है) के इंजेक्शन डिब्बे के डिब्बे रखे हुए हैं और फार्मासिस्ट मुझसे कह रहा था कि धीरे-धीरे इन्हें भी चढ़ाते रहो, ये सब खपानी हैं। तमाम दवाइयाँ ऐसी हैं, जिनकी खपत बहुत कम है लेकिन फर्जी तरीके से खपत से बहुत ज्यादा खपायी जा रही हैं।

2009 के स्वाइन फ्लू का भय अभी भी हम सब को याद होगा। दवा कम्पनियों ने विश्व स्वास्थ्य संगठन के वैज्ञानिकों को पैसा देखकर किस तरह स्वाइन फ्लू को विश्वव्यापी घोषित कराया और फिर किस तरह टेमिफ्लू जैसी दवाएँ व वैक्सीन दुनिया भर में बेचकर अरबों डॉलर की कमाई की। अब तो यह घोटाला पूरी तरह सामने भी आ चुका है।

नीरा राडिया अपनी कम्पनियों को जन सम्पर्क कम्पनियाँ कहती है। एक उदाहरण लेते हैं। आज कल बड़े शहरों में अस्पतालों में भी भीड़ लग गयी है। धनी लोगों के अलावा कॉरपोरेट भी इस काम में उतर आया है। अस्पतालों की अधिकता से तमाम अस्पतालों में मरीज कम आने की समस्या पैदा हो जाना स्वाभाविक है। इस लूट-खसोट के लिए लगभग सभी अस्पताल पब्लिक रिलेशन एजेंसियों (जन सम्पर्क ऐजेंसियों) से सम्पर्क साध रहे हैं, जिनका काम आस-पास के क्षेत्रों में घूमना वहाँ के प्रशिक्षित व अप्रशिक्षित डॉक्टरों को पटाना उन्हें मरीज भेजने के लिए प्रेरित करना उनका कमिशन तय करना और उन्हें समय से कमिशन पहुँचाना है।

दरअसल जन सम्पर्क कम्पनियाँ, जनसम्पर्क अधिकारी जैसी चीजें अस्तित्व में आने की वजह कम्पनियों के अपने अंतर्विरोध हैं। लॉबिंग को भी इसी के अनुरूप समझना चाहिए।

कम्पनियों के पास माल बना पड़ा है। उसकी बिक्री से उन्हें अधिक से अधिक मुनाफा चाहिए। उन्हें मंत्री व महानिदेशक से साँठ-गाँठ चाहिए, ताकि अपने माल को सरकारी तंत्र में अनावश्यक रूप से खरीदवाकर खपा सकें। सरकार से अपने पक्ष में नीतियाँ बनवा सकें। पेंडेमिक फ्लू की तरह विश्व स्वास्थ्य संगठन में कुछ ऐसा करवा सकें जिससे उनका मुनाफा बढ़ाता हो। कुछ ऐसी फर्जी खोजें करा सकें जो उनके माल को बेचने में महत्त्वपूर्ण हों। इन सभी तरह के कामों के लिए कम्पनियों को अलग-अलग तरह के दलालों की जरूरत पड़ती है और उसी के अनुसार वह तय करती है कि किस दलाल को लॉबिस्ट कहना है। किसे बाहरी मामलों का अधिकारी कहना है और किसे भीतरी मामलों का अधिकारी कहना है। लेकिन हमें सामाजिक रूप से इन्हें कॉरपोरेट दलाल ही कहना है।

सरकारी संस्थाओं में व्याप्त भ्रष्टाचार

सरकारी व्यवस्था भ्रष्टाचार का पर्याय बन गयी है। कोई भी विभाग ऐसा नहीं है जहाँ भ्रष्टाचार न हो। सरकारी दफ्तरों में बिना रिश्वत दिए कोई काम कराना लगभग असम्भव सा हो गया है। अगर आप चढ़ावा नहीं चढ़ा सकते, तो सरकारी दफ्तर में यूँ ही चक्कर काटते रहेंगे, आपका काम होना बेहद मुश्किल है।

काफी समय पहले एक अखबार में पुलिस के एक बड़े अधिकारी का लेख पढ़ा था अधिकारी ने लिखा था कि उन्होंने अपने समय में सरकार को दस सबसे भ्रष्ट आईपीएस

की सूची सौंपी थी, परन्तु सरकार ने कार्रवाई करने में कोई रूचि नहीं दिखायी। अखबार में छपे एक सर्वे में बताया गया था कि पुलिस विभाग व आयकर विभाग सबसे भ्रष्ट हैं। मतलब यह कि इस बात पर कोई मतभेद नहीं रह गया है कि पूरा सरकारी तंत्र भ्रष्ट है, अगर कोई बहस है, तो यही कि कौन सा विभाग अधिक भ्रष्ट है, कौन सा अधिकारी अधिक भ्रष्ट है।

विभिन्न विभागों व पदों के अनुसार सरकारी विभागों में कई तरह का, कई रूपों में भ्रष्टाचार है। नौकरशाह व मंत्रियों के बीच, अधिकारियों व कर्मचारियों के बीच, सरकारी कर्मियों व जनता के बीच और मंत्री व नौकरशाहों के बीच जो लेन-देन होता है उसका सबसे अच्छा उदाहरण है कि राज्य में जैसे ही नयी सरकार बनती है, नौकरशाही में भारी उठा-पटक शुरू हो जाती है। विभागीय प्रोन्नति समिति बैठती हैं। आईएएस को मनमाने विभाग मिलते हैं। खाली पड़े पदों पर नये अधिकारी बनाये जाते हैं। मुख्य चिकित्साधिकारी बनाये जाते हैं। स्थिति यह है कि उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों में बीएसए के लिए या मुख्य चिकित्साधिकारी के लिए जो रिश्वत दी जाती है वह 15 या 20 लाख रुपये तय हो गयी है। आपको आधिकारिक रूप से इसका कोई सबूत नहीं मिलेगा, लेकिन अनौपचारिक बातचीत में आप इस बात का पता आसानी से लगा सकते हैं।

सरकारी कर्मियों के बीच भ्रष्टाचार मुख्यतः रिश्वत के रूप में होता है और अधिकारी बाबुओं के साथ मिलकर अपने अधीनस्त अधिकारियों तथा कर्मचारियों से मिलकर रिश्वत वसूलते हैं। मनचाही जगह स्थानांतरण करवाना, काम पर न जाना व जो रिश्वत वे जनता से वसूलते हैं उसमें अधिकारियों को हिस्सा देना, ये कुछ ऐसे मामले हैं जिनमें अधिकारी/कर्मचारी अपनी इच्छा से ऊपर के अधिकारियों को रिश्वत की पेशकश करते हैं। इसके अलावा बाबुओं व अधिकारियों ने एक तंत्र बना रखा है जिसके तहत अधीनस्थों को रिश्वत देनी पड़ती है, जैसे- असुविधाजनक स्थानों पर स्थानान्तरण कर देना ताकि उसे रुकवाने के लिए अधीनस्थ रिश्वत दें, एरियर (अतिरिक्त भत्ता) बिना रिश्वत लिए न निकालना, छुट्टियाँ मंजूर कराने के लिए रिश्वत, बिना रिश्वत लिए पेंशन न बनाना, कोई बहाना बनाकर वेतन रोक देना फिर रुके हुए वेतन को निकलवाने के लिए रिश्वत माँगना। अच्छी वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट लिखने के लिए रिश्वत माँगना। ऐसे ही तमाम काम हैं, जिन्हें कराने के लिए सरकारी कर्मचारी अपने आला अफसरों, बाबुओं को रिश्वत देते हैं।

देश की जनता एक लोकतांत्रिक व्यवस्था में रहती है। राज्य व्यवस्था उस पर तमाम तरह के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कर लगाती है। इसके बदले उसकी जिम्मेदारी बनती है कि वह जनता को आवश्यक जन सुविधाएँ उपलब्ध कराये। राज्य व्यवस्था की इसी जिम्मेदारी के तहत एक सरकारी तंत्र खड़ा किया गया है। पुलिस, बैंक, सरकारी स्कूल, अस्पताल आदि के रूप में जो सरकारी तंत्र खड़ा किया गया है, आदर्श रूप में यह बताता है कि राज्य व्यवस्था जन सुविधाएँ देने की जिम्मेदारी लेती है। लेकिन राज्य व्यवस्था ने इस

सरकारी तंत्र को चलाने के लिए जो सरकारी कर्मचारी-अधिकारी-नौकरशाह-मंत्री आदि खड़े किये हैं, उन्होंने इस तंत्र को अपनी निजी सम्पत्ति समझ लिया है और वे जनता को उसकी आधिकारिक जन सुविधाएँ देने के बदले रिश्वत वसूलना अपना अधिकार समझते हैं।

सन 2010 घोटालों के लिए चर्चित रहा। देखा गया कि अखबारों में भ्रष्टाचार के ऊपर जो बहसें चलीं उनमें यह बात लगातार स्थापित की गयी कि जनता ही व्यवस्था को भ्रष्ट करती है। वह गलत काम कराने के लिए खुद रिश्वत देती है।

ट्रेस इण्टरनेशलन द्वारा जनवरी 2009 में प्रकाशित रिपोर्ट के अनुसार-

1. 91 प्रतिशत सरकारी अधिकारियों द्वारा रिश्वत माँगी गयी।
2. 77 प्रतिशत रिश्वत अपने किसी नुकसान को बचाने के लिए दी गयी।
3. 51 प्रतिशत रिश्वत समय पर काम कराने के लिए माँगी गयी।
4. 12 प्रतिशत रिश्वत व्यक्तिगत लाभ हासिल करने के लिये दी गयी।

कुछ लोग अपने फायदे के लिए भी सरकारी कर्मचारियों-अधिकारियों को रिश्वत देते हैं, परन्तु उपर्युक्त रिपोर्ट से जाहिर है कि अधिकांश मामलों में सरकारी मशीनरी जनता को रिश्वत देने के लिए मजबूर करती है।

ट्रांस्पेरेंसी इंट्रनेशनल के अनुसार भारत में ट्रक वाले प्रतिवर्ष 250 अरब रुपये रिश्वत देते हैं।

आज पूरी व्यवस्था भ्रष्टाचार की गिरफ्त में हैं। कोई विभाग ऐसा नहीं है जिसमें भ्रष्टाचार न हो, कोई क्षेत्र ऐसा नहीं है जिसमें भ्रष्टाचार न हो। मुख्य सतर्कता आयुक्त की वार्षिक रिपोर्ट 2010 के अनुसार सबसे भ्रष्ट रेलवे विभाग है। सतर्कता आयोग ने वर्ष 2010 में कुल 2982 अफसरों के खिलाफ कार्रवाई की उनमें से 911 रेलवे के थे। यानी हर तीसरा व्यक्ति रेलवे विभाग का है। भ्रष्टों की सूची में रेलवे के बाद सार्वजनिक क्षेत्रें के बैंक (कैनरा, विजया, पंजाब नेशनल, भारतीय स्टेट बैंक), दिल्ली विकास प्राधिकरण व दिल्ली नगर निगम हैं।

जो मामले केन्द्रीय सतर्कता आयुक्त को मिले हैं, उससे लगता है कि रेलवे सबसे भ्रष्ट विभाग है, परन्तु किस विभाग में किस तरह का भ्रष्टाचार और कितना भ्रष्टाचार होगा, यह इस बात पर निर्भर करता है कि जनता से उनका सम्बन्ध किस तरह का है। कई अन्य एजेंसियों ने जो सर्वेक्षण किये हैं, उनमें से अधिकांश यही मानते हैं कि पुलिस, कर व तटकर विभाग सबसे भ्रष्ट हैं। इकनोमिक जॉर्नल की रिपोर्ट के अनुसार भारत में विभिन्न विभागों से जन सुविधाएँ लेने के लिए दी जाने वाली रिश्वत इस प्रकार है-

पुलिस -	64 प्रतिशत
भूमि सेवाएँ (जैसे जमीन खरीदना-बचेना आदि)-	63 प्रतिशत
रजिस्ट्री और परमिट सेवा-	62 प्रतिशत
कर राजस्व-	52 प्रतिशत

अन्य विविध प्रकार की अवर्गीकृत सेवाएँ-	47 प्रतिशत
न्यायालय-	45 प्रतिशत
तटकर-	41 प्रतिशत
चिकित्सा सेवाएँ-	26 प्रतिशत
शिक्षा-	23 प्रतिशत

जहाँ तक किसी विभाग के कम या अधिक भ्रष्ट होने का सवाल है, तो वह इस बात पर भी निर्भर करता है कि उस विभाग के पास किस तरह की और कितनी शक्तियाँ हैं, उसके पास सरकारी बजट कितना आता है और उसे जनता को सुविधाएँ देने का जो जिम्मा सौंपा गया है, वह किस तरह का है। जैसे आयकर व पुलिस दोनों ही सबसे भ्रष्ट विभागों में हैं। पुलिस विभाग बेहद शक्ति सम्पन्न है। उसके पास हर तरह की ताकत है। वह किसी को अपराधी बना सकता है। सड़क के किनारे बैठकर सामान बेचने वाले से हफ्ता वसूली कर सकता है। यहाँ तक कि वह अपराधियों से भी अपना हिस्सा लेकर उन्हें अपराध करने की छूट दे सकता है। यानि पुलिस विभाग के पास वह ताकत है कि वह ऐसा हर काम कर सकता है जिसे रोकने के लिए उसे कानूनी शक्तियाँ दी गयी हैं। आप उन राज्यों की बात तो छोड़ ही दीजिए, जहाँ कानून व्यवस्था कभी अच्छी नहीं रही। दिल्ली देश की राजधानी है, वहीं देख लीजिए। वहाँ की पुलिस और दूसरे राज्यों की पुलिस के चरित्र में कोई अंतर नहीं होता। फर्क सिर्फ इतना है कि उनकी कार्यशैली में थोड़ा अन्तर होता है। लेकिन भ्रष्टाचार के मामले में पूरे देश की पुलिस में ज्यादा अंतर नहीं है।

मेरे एक करीबी पुलिस इंस्पेक्टर, सार्वजनिक जीवन में काफी धार्मिक प्रवृत्ति के, सीधे और ईमानदार माने जाते थे। उनका पेशागत चरित्र जो भी हो पर सार्वजनिक जीवन में वे ऐसे ही थे। एक आत्मीय बातचीत में उनके घरवालों से पता चला था कि वे भी करीब 60 लाख से ऊपर पहुँच गये हैं। सोचने की बात है कि एक ईमानदार पुलिस इंस्पेक्टर जब आधा-एक करोड़ आसानी से कमा लेता है, तो बेईमान कितने करोड़ कमाता होगा। पुलिस विभाग की तरह ही आयकर विभाग भी अत्यधिक भ्रष्ट माना जाता है। जहाँ पुलिस विभाग एक रिक्शा चालक से लेकर समृद्ध लोगों तक जुड़ा होता है, वहीं आयकर विभाग समृद्ध लोगों से ही जुड़ा होता है। इसलिए एक दरोगा करोड़-दो करोड़ पूरी जिंदगी में कमा पाएगा और उसे सब जान जाएँगे कि वह भ्रष्ट है, परन्तु एक आयकर अधिकारी कुछ ही लोगों से और थोड़े ही समय में यह रकम कमा सकता है।

4 जून 2012 को सीबीआई ने आयकर निदेशक कुणाल को गिरफ्तार किया। उस पर रियल एस्टेट कम्पनी एल्डिको से 30 लाख रुपये घूस लेने का आरोप था। आयकर वाले छोटे पूँजीपतियों या विभिन्न उच्च वर्गीय लोगों के यहाँ छापे मारते रहते हैं। पकड़ी गयी सम्पत्ति को घूस लेकर छोड़ देते हैं या कम कर के दिखा देते हैं। इसके बारे में सीबीआई से लेकर प्रधानमंत्री और न्यायाधीश तक सब जानते हैं।

स्वास्थ्य विभाग की सबसे बड़ी संस्था है मेडिकल काउंसिल ऑफ इंडिया। इसका एक काम मेडिकल कॉलेजों को मान्यता देना भी है। 2010 में केतन देसाई इसका चेयरमैन था। उस पर पंजाब के एक मेडिकल कॉलेज ने मान्यता देने के बदले दो करोड़ की रिश्वत लेने का आरोप लगाया। 23 अप्रैल 2010 को केतन देसाई को गिरफ्तार किया गया। उसके पास बेशुमार सम्पत्ति पकड़ी गयी। उसके बाद चेयरमैन का पद भंग कर के बोर्ड ऑफ गवर्नर्स बना दिया। दरअसल मेडिकल कॉलेजों के मालिकों व केतन देसाई के बीच कुछ गलतफहमियाँ पैदा हो गयी, देसाई मनमानी पर उतर आया। लिहाजा मेडिकल कॉलेजों के मालिकों ने उसे हटवा दिया, वरना सब जानते हैं कि एक भी कॉलेज मेडिकल काउंसिल के मानकों को पूरा नहीं करता। केतन देसाई के समय में भी फर्जीवाड़ा होता था, अब भी होता है।

इसी तरह आरटीओ (परिवहन अधिकारी) व रजिस्ट्रार भी रिश्वतखोरी के बहुत बड़े अड्डा हैं। आरटीओ में क्लर्क की नौकरी मिलना भी लोगों के लिए सौभाग्य की बात होती है। जब मैं उत्तराखण्ड में कार्यरत था, वहाँ एक फूड इंस्पेक्टर थे। बताते थे कि उनके साथ एक लड़की सिविल सर्विस की तैयारी कर रही थी। वह मध्य प्रदेश में रजिस्ट्रार हो गयी है। उसकी एक दिन की कमाई पचास हजार, एक लाख, दो लाख कुछ भी हो सकती है। खुद फूड इंस्पेक्टर की भी अच्छी कमाई होती है। आज बाजार में हर चीज में मिलावट है, दूध और मिठाईयों में खतरनाक पदार्थ मिलाये जाते हैं। इन सबको रोकने की जिम्मेदारी फूड इंस्पेक्टर की ही तो होती है।

हर विभाग के लिए जिला मुख्यालय भ्रष्टाचार का सबसे बड़ा अड्डा है। ब्लॉक, तहसील व कलक्ट्रेट (जिलाधिकारी कार्यालय) के लिए विभिन्न योजनाओं में तमाम बजट आता है। इस बजट का बड़ा हिस्सा ये लोग खुद ही खा जाते हैं। इसके अलावा एक आम आदमी से लेकर उद्योगपति तक के काम इनके कार्यालय से जुड़े होते हैं और यहाँ बिना रिश्वत दिये कोई काम आगे नहीं बढ़ता। तहसील से या जिलाधिकारी कार्यालय से आप आय प्रमाण पत्र या जाति प्रमाण पत्र बनवाना चाहते हैं, तो उसकी पूरी प्रक्रिया है। लेखपाल से लेकर जिलाधिकारी तक। जब तक लेखपाल अपनी आख्या नहीं लगाएगा, तब तक प्रमाण पत्र बनेगा नहीं और बिना पैसा दिये लेखपाल को ढूंढ़ पाना आसान नहीं है। इसलिए लोग वही रास्ता अपनाते हैं जो वह चाहता है। शाम को उसके घर जाओ और जो भाव चल रहा है वह दे दो, वह अपनी आख्या लगा देगा। सुबह तहसील जाकर भी यही कीजिये नहीं तो वह आपको लेखपाल से ज्यादा चक्कर लगवा देगा। इस तरह दो दिन में आपका प्रमाण पत्र बन जायेगा वरना आप महीने भर भागने के बाद भी प्रमाण पत्र बनवा नहीं पायेंगे।

इकनोमिक जॉर्नल की रिपोर्ट के अनुसार पुलिस रजिस्ट्री ऑफिस और कर विभाग सबसे ज्यादा भ्रष्ट हैं, जबकि स्वास्थ्य एवं शिक्षा विभाग सबसे कम। ऐसा नहीं है कि इन

विभागों में ईमानदार लोग हैं इसलिए रिश्वत कम है। अगर एक शिक्षक जनता से रिश्वत लेना भी चाहे, तो उसे ऐसे अवसर नहीं हैं, जैसे सिपाही या दरोगा को होते हैं। शिक्षक अधिक से अधिक यही कर सकता है कि छात्रों को ट्यूशन के लिए मजबूर करे या अपने अधिकारियों से जुगाड़ बैठा कर विद्यालय न जाये और उस समय को अपने किसी काम-धंधे में लगाकर पैसा कमाये। ऐसा भारी तादात में हो भी रहा है। यह बात स्वास्थ्य विभाग पर भी लागू होती है। तमाम डॉक्टर मुख्य चिकित्साधिकारी को पैसे देकर अस्पताल जाने से छुट्टी पा लेते हैं और मजे में अपना क्लीनिक चलाते हैं। मेडिको लीगल मामले में पैसे लेकर चोटें कम-ज्यादा लिख देते हैं। लेकिन इन विभागों में आपको असली भ्रष्टाचार देखना है तो जिला मुख्यालय पर जाकर मुख्य चिकित्साधिकारी व बेसिक शिक्षा अधिकारी के कार्यालय में जाना पड़ेगा जहाँ अधिकारी को तो छोड़िए, बाबुओं की भी चाँदी होती है।

भ्रष्टाचार का कुछ सम्बन्ध जनता की जागृति से भी है। जैसे जिला या तहसील स्तर के कस्बों में कर्मचारियों व अधिकारियों को लगभग नियमित जाना पड़ता है जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में वे गायब रहते हैं।

राजनीतिक भ्रष्टाचार

आज राजनीति में भ्रष्टाचार चरम पर है। नित नये घोटाले सामने आ रहे हैं। एक हजार, दो हजार करोड़ के घोटालों पर तो अब कोई ध्यान भी नहीं देता। एक-दो लाख करोड़ के घोटाले को ही आज घोटाला माना जा रहा है।

यूँ तो आज पूरी व्यवस्था ही भ्रष्ट है और हर क्षेत्र में भ्रष्टाचार है, परन्तु पूरी व्यवस्था में हर क्षेत्र के तार राजनीति से जुड़े होते हैं, इसलिए भ्रष्टाचार के मामले में सबसे अधिक बदनाम नेता होते हैं। दरअसल विधायिका के पास तमाम शक्तियाँ होती हैं और वे उन शक्तियों का उपयोग अपने निजी हितों को भ्रष्ट तरीके से साधने में करते हैं। विधायिका का मुख्य काम सरकारी मशीनरी पर नियंत्रण रखना व राज्य के लिए नीतियाँ बनाना व कानून बनाना है।

राजनीति में भ्रष्टाचार कई रूपों में विद्यमान है। नेताओं द्वारा नौकरशाही के माध्यम से रिश्वत लेना, सांसद निधि या विद्यायक निधि से पैसे चुराना, रिश्वत लेकर नौकरी की सिफारिश करना, नौकरशाहों द्वारा विभिन्न प्रतियोगी परीक्षाओं में फर्जीवाड़ा कराकर रिश्वत में हिस्सा लेना, पैसे लेकर तबादले कराना, अपने घर-परिवार व रिश्तेदारों को सरकारी पद या नौकरी दिलवाना, उन्हें सरकारी ठेके दिलवाना, पूँजीपतियों से पैसे लेकर उनके हित में नीतियाँ बनाना, कम्पनियों से पैसे लेकर उन्हें तरह-तरह की सुविधाएँ देना आदि राजनीति में भ्रष्टाचार के विभिन्न रूप हैं।

मंत्रियों के लिए भ्रष्टाचार का एक बड़ा स्रोत सरकारी मशीनरी है, जैसे ही सरकार बदलती है, वैसे ही पूरी सरकारी मशीनरी में उठा-पटक शुरू हो जाती है। भारी मात्र में

आईएएस, आईपीएस, पीसीएस व जिला स्तरीय अफसरों के तबादले व तरक्की होती हैं। बताया जाता है कि उत्तर प्रदेश में मुख्य चिकित्साधिकारी के बीस लाख व बेसिक शिक्षा अधिकारी के पंद्रह लाख का तय भाव चल रहा है। सरकार किसी भी पार्टी की आए अफसरों के तबादले व तरक्की की प्रक्रिया पर कोई फर्क नहीं पड़ता। नयी सरकार सिर्फ यह देखती है कि पिछले बार ये काम कितने में हुए थे और वर्तमान में पिछले भाव से कितने की बढ़ोत्तरी करनी है। ये सब काम इतने सामान्य और स्थापित हैं कि अगर आप विभाग में नौकरी करते हैं तो अनौपचारिक बातों में कोई भी आपको बता सकता है। इन्हें लोकपाल जैसे किसी कानून से रोकना भी सम्भव नहीं लगता।

राजनीति में भ्रष्टाचार का एक तरीका विभिन्न प्रतियोगी परीक्षाओं में घपला करना भी है। दरोगा भर्ती और टीईटी परीक्षाओं में घपले के मामले तो चर्चा में रहे हैं, परन्तु हर प्रतियोगी परीक्षा व भर्ती में घपले होते हैं और वे व्यवस्था का इस कदर हिस्सा बन गये हैं कि उनके बारे में लगता ही नहीं कि कुछ असमान्य हो रहा है।

पिछले वर्ष मैं आगरा मेडिकल कॉलेज गया था। वहाँ दूसरे साथी भी मेरे साथ थे। आपस में परा स्नातक मेडिकल परीक्षा की बात होने लगी। किसी ने बताया कि परा स्नातक की सीट पच्चीस से तीस लाख के बीच तय हुई है। किसी ने कहा कि चुनाव आने वाले हैं, सरकार बदल गयी तो कहीं कुछ सवाल न खड़ा हो जाये। इस पर किसी ने कहा कि यह तो भूल ही जाइये। ये काम इतने फेयर तरीके से होते हैं कि सरकार बदलने से कोई फर्क नहीं पड़ेगा। पिछले बीस सालों से मैं देख रहा हूँ कि ऐसा एक साल भी नहीं गुजरा जब स्नातक व परा स्नातक मेडिकल परीक्षाओं में घपले की खबरें न उड़ती हों। जब-तब परीक्षा रद्द भी हुई हैं और उनकी जाँच भी हुई है। इसका मतलब यह नहीं है कि जिन वर्षों में परीक्षाएँ निरस्त नहीं हुई हैं या जाँच नहीं हुई है वे बिना घपले के हुई हैं। दरअसल इन परीक्षाओं में बैठने वाले परीक्षार्थी पहले ही यह मानकर चलते हैं कि वे छः सौ सीट पर परीक्षा न देकर साढ़े चार सौ सीट पर ही परीक्षा दे रहे हैं। दिक्कत तब होती है जब घपला भारी मात्र में होता है या घपला करने वालों की तरफ से कहीं कोई कमजोर बिंदु छूट जाता है और वह जाँच के घेरे में आ जाता है।

भर्तियों और प्रशासनिक तंत्र से मंत्रीगण किस तरह मोटी कमाई करते हैं इसका एक अच्छा उदाहरण उत्तर प्रदेश में राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन घोटाला है। परिवार कल्याण मंत्री बाबू सिंह कुशवाहा ने मंत्री बनने के बाद 2010 में स्वास्थ्य विभाग में एक नया पद सृजित किया। जिला परियोजना अधिकारी, यानी डीपीओ ने इस पद के सृजन के पीछे तर्क यह दिया कि मुख्य चिकित्साधिकारी के पास अधिक काम होने के कारण वह ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन का काम ठीक से नहीं देख पा रहे हैं। इस मिशन का सारा बजट डीपीओ के हाथ में दे दिया गया। उसके बाद ऐसा बताया जाता है कि डीपीओ के लिए जुगाड़ बैठाने की मारामारी मच गयी। जिन्होंने सीएमओ बनने के लिए बीस लाख

उठाकर रख रखे थे उन्होंने फटाफट डीपीओ का पद लपक लिया। मई में पद सृजित होने के बाद ही डीपीओ और सीएमओ में ठनने लगी। अक्टूबर में डीपीओ का नाम बदलकर सीएमओ (परिवार कल्याण) कर दिया और सीएमओ का सीएमओ (प्रशासन)। आगे चलकर लखनऊ में दो सीएमओ (परिवार कल्याण) की हत्या हो जाने के बाद 2011 में इस पद को पुनः समाप्त कर दिया गया।

2010 में ही परिवार कल्याण मंत्री बाबू सिंह कुशवाहा ने करीब 1600 आयुश (आयुर्वेद योगा, यूनानी, सिद्ध, होम्योपैथ) चिकित्सकों की संविदा पर भर्ती निकाली। इससे पहले हर जिले में चार आयुश चिकित्सकों की संविदा पर भर्ती सीएमओ द्वारा की गयी थी। बताते हैं सीएमओ ने जो भर्तियाँ की थी, वे 45 से 50 हजार के बीच हुई थीं, जबकि 2010 में सारी भर्तियाँ मंत्री स्तर से ही तय की गयीं और वे एक से सवा लाख के बीच हुई थीं। इन बातों के कोई सबूत नहीं होते हैं, परन्तु आपके परिचय में अगर ये चयनित किये गये आयुश चिकित्सक हैं, तो वे आपको इसकी विश्वसनीय जानकारी दे देंगे। इन भर्तियों से राज्य की स्वास्थ्य सेवाओं में कोई अंतर आया हो, ऐसा नहीं है क्योंकि इनकी प्रणाली से जो इलाज किया जाता है उसकी व्यवस्था राज्य सरकार ने स्वास्थ्य विभाग में की ही नहीं है। हाँ इनके वेतन का करीब साढ़े चार करोड़ रुपये महीने का खर्च स्वास्थ्य विभाग पर जरूर डाल दिया गया।

राजनीति में भ्रष्टाचार का एक बहुत बड़ा माध्यम है कमीशन। सरकार जो खरीददारी करती हैं, उसमें राजनेता और नौकरशाह अच्छी खासी कमीशन खाते हैं।

कैग रिपोर्ट के अनुसार दिल्ली राष्ट्रमण्डल खेलों के समय सरकार ने 2004 से 2009 तक वातानुकूलित, गैर-वातानुकूलित 3156 लो फ्लोर बसें टाटा से खरीदीं। टाटा ने वातानुकूलित बसों की कीमत 64.19 लाख और गैर-वातानुकूलित बसों की कीमत 55.20 लाख रखी। दिल्ली परिवहन निगम के तकनीकी विभाग ने गैर-वातानुकूलित बसों की कीमत 42.92 लाख व वातानुकूलित बसों की कीमत 50.56 लाख रुपये आँकी। सरकार ने टाटा से समझौता कर वातानुकूलित बसें 61.62 लाख व गैर-वातानुकूलित बसें 51.89 लाख में खरीद लीं। कैग की रिपोर्ट में कहा गया है कि 12 साल तक वार्षिक रख-रखाव के लिए सरकारी खजाने पर 833 करोड़ का बोझ डाला गया है। इतना ही नहीं नियमानुसार सरकार को 20 प्रतिशत रकम रोक के रखनी थी और उसने 15 प्रतिशत ही रकम रोकी। यानी उसमें भी सरकार ने टाटा को 5 प्रतिशत की छूट दे दी। यह राशि सब कुछ जाँचने-परखने के बाद देनी थी। कैग का यह भी मानना है कि अवरोधक एवं फिसलन रोधी जैसे अनावश्यक तंत्र लगवाने पर 168.94 करोड़ का अनावश्यक बोझ सरकारी खजाने पर डाला गया।

सच तो यह है कि परिवहन निगम के तकनीकी विभाग ने जो कीमत लगायी थी वह भी बहुत अधिक है। 34 सवारियाँ ले जाने वाली यह बस एक सामान्य बस से सिर्फ

इतनी ही अलग है कि यह लो फ्लोर है और दरवाजे ड्राइवर बंद करता है। तकनीकी रूप से भी ये बसें बहुत गड़बड़ हैं। कई बसों में आग लग चुकी है। कुल मिला कर सरकार व टाटा ने मिलकर जनता को एक बस पर 20-25 लाख का चूना लगा दिया।

इसी तरह उत्तराखण्ड सरकार ने 2007-2008 में एक एम्बुलेंस (सचल चिकित्सा वाहन-या मोबाइल वैन) सेवा शुरू की। 2008 में मैंने आरटीआई से इस चिकित्सा वाहन के बारे में जानकारी ली तो पता चला, टाटा मोटर्स के चैस वाले इस वाहन को मेडिट्रोनिक्स मेन्युफेक्चरिंग कम्पनी से 79,93,616.0 रुपये में खरीदा गया है और उस पर कर (टैक्स) अलग से। इस तरह यह एम्बुलेंस करीब एककरोड़ की पड़ेगी जबकि यह एक साधारण सी एम्बुलेंस ही है।

दरअसल ये सब कमीशनखोरी के गोरखधंधे हैं जो सरकारें नौकरशाहों के साथ मिलकर करती हैं और माल की आपूर्ति करने वालों के साथ मिलकर जनता को चूना लगाती हैं।

कुछ सालों से भारतीय राजनीति में एक के बाद एक घोटाला उजागर हो रहा है। नये घोटाले के बाद पिछले बड़े घोटाले की रकम बौनी साबित होती है। पिछले दो सालों में ही राष्ट्रमण्डल खेल घोटाला, 2जी स्पैक्ट्रम घोटाला, कर्नाटक में खनन घोटाला, आदर्श सोसाइटी घोटाला, झारखंड के पूर्व मुख्यमंत्री मधु कोड़ा की अथाह सम्पत्ति व जगन की सम्पत्ति के मामलों के बाद अब कोयला घोटाला और हेलीकॉप्टर खरीद घोटाला प्रकाश में आया है।

भ्रष्टाचार और घोटाले कोई नयी चीज नहीं हैं। अंग्रेजों के समय वारेन हेस्टिंग्स को भ्रष्टाचार के जुर्म में ब्रिटेन में महाभियोग झेलना पड़ा था। उसके बाद देश आजाद हुआ। अभी देश आजादी की पहली वर्षगाँठ भी ठीक तरह से नहीं मना पाया था कि 1948 में जीप घोटाला हो गया। पाकिस्तानी हमले के बाद भारतीय सेना को करीब 4600 जीपों की जरूरत थी। वीके कृष्ण मेमन भारत में उच्चायुक्त थे। उनके कहने पर रक्षा मंत्रालय ने 300 पाउंड प्रति जीप के हिसाब से 1500 जीपों का आदेश दे दिया। 9 महीने बाद 155 जीपें मद्रास बन्दरगाह पर पहुँची जो जीपें पहुँची थीं वे भी तय मानक पर खरी नहीं उतरती थीं। मामले की जाँच हुई। मेमन दोषी पाये गये पर नेहरू ने बजाय उनके खिलाफ कोई कार्रवाई करने के उन्हें अपने मंत्रीमण्डल में रक्षा मंत्री बना दिया, इस तरह स्वतंत्र भारत के पहले घोटाले की जो परिणति हुई, उसने आने वाले घोटालों के लिए आईना दिखाने का काम किया और पहले घोटाले के उस बीज से घोटालों का एक महावृक्ष बन गया।

1949 में उद्योग मंत्री व अर्जुन सिंह के पिता राव शिव बहादुर सिंह पर हीरा-जवाहरात के व्यापारी सचेन्द्र भाई बरोन को हीरा खदान की लीज का फर्जी दस्तावेज देने के बदले 25,000 रुपये रिश्वत लेने का आरोप लगा। बाद में वे दोषी पाये गये और उन्हें जेल हुई। 1951 में वाणिज्य एवं उद्योग मंत्री एमए वैंकट रमन पर गलत तरीके से

एक कम्पनी को साइकिल आयात कराने का आरोप लगा और बाद में उन्हें जेल भी भेजा गया। 1956 में खान दलाली मामला प्रकाश में आया। खबर थी कि उड़ीसा के कुछ नेता व्यापारियों के हित में काम कराने के बदले दलाली ले रहे हैं। देश में कई जगह छापामारी की गयी। एक व्यवसायी मुहम्मद सिराजुद्दीन एंड कम्पनी के कोलकाता और उड़ीसा स्थित दफ्तरों में छापामारी की गयी। सिराजुद्दीन कई खानों का मालिक था। उसके पास से एक डायरी बरामद हुई। जिससे पता चला कि उसके कई जाने-माने राजनेताओं से सम्बन्ध थे। पहले इसमें कोई कार्यवाही नहीं हुई। बाद में जब मीडिया में खबर आयी तो तत्कालीन खान और ईंधन मंत्री केशव देव मालवीय ने यह स्वीकारा कि उन्होंने उड़ीसा के एक खान मालिक से 10,000 रुपये की दलाली ली थी। बाद में उन्हें मंत्री पद से इस्तीफा देना पड़ा।

1957 में फिरोज गाँधी ने संसद में एक खुलासा किया। उद्योगपति हरिदास मुंधा की कई कम्पनियों को मदद पहुँचाने के लिए उनके शेयर जीवन बीमा निगम द्वारा 1. 25 रुपये में खरीदवाये गये। जाँच हुई तो इसमें वित्त मंत्री टीटी कृष्णमाचारी, वित्त सचिव व जीवन बीमा निगम के चेयरमैन दोषी पाये गये। कृष्णमाचारी को पद से हटा दिया गया और हरिदास मुंधा को 22 साल की सजा हुई।

1963 में पंजाब के मुख्यमंत्री प्रताप सिंह कैरो के खिलाफ काँग्रेसी नेता प्रबोध चन्द्र ने गैर कानूनी सम्पत्ति जमा करने के लिए आरोप पत्र दाखिल किया। उन पर कई सिनेमा घर, कोल्ड स्टोरेज, ब्रिक सोसाइटी, नेशनल मोटर्स जैसी तमाम सम्पत्तियाँ इकट्ठी करने का आरोप था। जाँच हुई और रिपोर्ट में कहा गया कि यह सम्पत्ति कैरो ने नहीं, उनके पुत्र एवं पत्नी ने कमायी है। कैरो को बरी कर दिया गया।

उड़ीसा के मुख्यमंत्री बीजू पटनायक को 2 अक्टूबर 1963 को इस्तीफा देना पड़ा। उन पर आरोप था कि उन्होंने अपनी निजी कम्पनी कलिंगा ट्यूबस को सरकारी ठेका दिया। एचआर खन्ना कमीशन ने जाँच की और उसे दोषी पाया।

1971 नागरवाला कांड सामने आया। 21 मई का स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया की संसद मार्ग शाखा दिल्ली के कैशियर के पास फोन आया जिसमें बांग्लादेश के गुप्त मिशन के लिए 60 लाख रुपये की माँग की गयी और प्रधानमंत्री कार्यालय से इसकी रसीद लेने को कहा गया। फोन पर सुनी गयी आवाज इंदिरा गाँधी और पीएस हक्सर की बतायी गयी। बाद में कहा गया कि रुस्तम सोहराब नागरवाला नाम के व्यक्ति ने नकली आवाजें बनाकर फोन किया था। 1972 में संदेहास्पद स्थिति में नागरवाला की मौत हो गयी और यह मामला यहीं समाप्त हो गया।

आपातकाल के दौरान कर्नाटक के मुख्यमंत्री देवराज अर्स और उनके मंत्रियों पर भ्रष्टाचार के करीब 25 आरोप लगे। उनके खिलाफ 20 एकड़ जमीन अपने दामाद को आवंटित करने, अपने भाई को फिल्म उद्योग का प्रभारी बनाने, सगे-सम्बन्धियों को फायदा

पहुँचाने, अपने परिवार को बैंगलोर के बेहद कीमती इलाके में प्लॉट दिलवाने के मामले थे, लेकिन इन सब मामलों को लेकर कोई कार्रवाई नहीं हुई। 1974 मारूति घोटाला सामने आया। खबर थी कि मारूति कार बनाने के लिए संजय गाँधी ने प्रतिबंधित क्षेत्र में लाइसेंस देने की सिफारिश की।

1976 में कुओं तेल कांड अस्तित्व में आया। पेट्रोलियम मंत्री के निर्देशन में इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन ने हांगकांग की कुओं ऑयल कम्पनी के साथ एक डील की। जबकि हांगकांग में इस नाम की कोई कम्पनी थी ही नहीं।

1981 में महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री एआर अंतुले ने विभिन्न ट्रस्टों के माध्यम से 30 करोड़ रुपये इकट्ठा किये। जो व्यवसायी इन ट्रस्टों को पैसा देते थे, उन्हें नियम-कानून ताक पर रखकर सीमेंट का कोटा दिया जाता था।

1987 में चर्चित बोफोर्स का मामला प्रकाश में आया। यह एक स्वीडिश फर्म में तोप की खरीद में 64 करोड़ की दलाली का मामला था, जिससे तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गाँधी का नाम जुड़ा था।

1990 के बाद जब आर्थिक उदारीकरण का दौर शुरू हुआ और ऐसा कहा जा रहा था कि अर्थव्यवस्था मुक्त हो गयी। दरअसल भारत की अर्थव्यवस्था घोटालों के लिए मुक्त हो गयी। एक तरह से देश में राम नाम की लूट मच गयी।

1990 में 2000 करोड़ का एयरबस घोटाला सामने आया।

1992 में 10 हजार करोड़ का प्रतिभूति घोटाला सामने आया। इसमें शेयर दलाल, बैंक और राजनेता जुड़े थे।

1991 में हवाला केस का खुलासा हुआ यह एक करोड़ अस्सी लाख डॉलर की घूस का मामला था, जिसमें एलके आडवानी, शरद यादव, बलराम जाखड़, मदन लाल खुराना सहित कई नेताओं के नाम जुड़े थे।

1994 चीनी घोटाला सामने आया। इससे खाद्य आपूर्ति मंत्री कल्पनाथ राय का नाम जुड़ा था। यह चीनी के आयात में 650 करोड़ के घोटाले का मामला था।

1995 में झारखंड मुक्ति मोर्चा के सांसद शैलेन्द्र महतो ने स्वीकार किया कि उनके साथ तीन सांसदों ने 1993 में पीवी नरसिम्हा राव सरकार को बचाने के लिए 30-30 लाख रुपये लिये थे।

1996 में 1000 करोड़ का चारा घोटाला सामने आया जिसमें बिहार के मुख्यमंत्री लालू प्रसाद का नाम था।

1996 लक्खू भाई पाठक का रिश्वत मामला प्रकाश में आया। प्रधानमंत्री पीवी नरसिम्हा राव और उसके तांत्रिक गुरू चन्द्रा स्वामी पर पेपर पल्प कॉन्ट्रेक्ट के बदले 1 लाख पाउंड की रिश्वत लेने का मामला था। 2003 में लक्खू भाई की मौत के बाद यह मामला खत्म हो गया।

1996 में टेलीकॉम घोटाला सामने आया इसमें संचार मंत्री सुखराम जुड़े थे। यह हैदराबाद की एक टेलीकॉम कम्पनी से सामान खरीदने में हुए 1.6 करोड़ की गड़बड़ी का मामला था।

1996 में यूरिया घोटाला सामने आया। नेशनल फर्टिलाइजर का मैनेजिंग डाइरेक्टर सीएस रामा कृष्णन और नरसिम्हा राव के करीबी व्यवसायिक समूह के 2 लाख टन यूरिया के आयात का मामला था। यह यूरिया प्राप्त हीं नहीं हुआ था।

20वीं शताब्दी के अंतिम तीन वर्ष घोटालों की दृष्टि से इसलिए संकटपूर्ण रहे, क्योंकि 1996 में लोक सभा चुनाव हो गये। स्पष्ट बहुमत किसी को मिला नहीं। अटल बिहारी, देवगौड़ा और गुजराल के प्रधानमंत्री बनने की उठा-पटक में ही लगभग दो साल निकल गये। 1998 में फिर चुनाव हुए और राजग के अटल बिहारी वाजपेयी प्रधानमंत्री बने। नयी सरकार बनती है तो साल-दो साल तो उसे पटरी पर आने में लगते ही हैं। इस तरह शताब्दी के अंतिम तीन वर्ष घोटालों की दृष्टि से कमजोर रहे। लेकिन नयी शताब्दी की शुरूआत खराब नहीं रही। हालाँकि 1996 में जैन हवाला कांड में लाल कृष्ण आडवाणी सहित कई राजग नेताओं का नाम तब भी आ चुका था जब वे सत्ता में नहीं थे फिर भी सत्ता में आने के बाद वे क्या कर रहे थे, उसका खुलासा तहलका स्टिंग ऑपरेशन में हुआ।

2001 में तहलका न्यूज पोर्टल ने यह जानने के लिए कि हमारी नयी सरकार कैसे काम कर रही है, एक स्टिंग ऑपरेशन किया। यह स्टिंग ऑपरेशन इस बात का खुलासा करता था कि रक्षा सौदों में किस तरह की रिश्वत और दलाली चल रही थी। लोगों ने भाजपा के अध्यक्ष को टीवी पर रिश्वत लेते देखा। इसमें तत्कालीन रक्षामंत्री जॉर्ज फर्नांडीज व एक नेवी अफसर का नाम भी सामने आया।

इसके बाद बराक मिसाइल सौदे में भ्रष्टाचार का मामला सामने आया। तमाम आपत्तियों के बावजूद 270 मिलियन डॉलर का बराक मिसाइल इजराइल से खरीदा गया। इस सौदे के लिए डिफेंस रिसर्च डेवलपमेंट ऑर्गेनाइजेशन के अध्यक्ष एपीजे अब्दुल कलाम ने भी आपत्ति की थी। फिर भी 23 अक्टूबर 2000 को इस सौदे पर हस्ताक्षर कर दिये गये। बाद में जॉर्ज फर्नांडीज, जया जेटली समता पार्टी के कोषाध्यक्ष आरके जैन व नेवी अफसर सुरेश नंदा के विरुद्ध एफआईआर दर्ज हुई। राजग सरकार ने इसकी जाँच एक आयोग गठित कर करायी। बाद में संप्रग सरकार ने इसकी जाँच सीबीआई को सौंप दी। इस केस की एफआईआर में तहलका स्टिंग ऑपरेशन का जिक्र था, जिसमें आरके जैन ने स्वीकार किया था कि सौदे का 3 प्रतिशत जॉर्ज फर्नांडीज व जया जेटली को मिला है और उसे 0.5 प्रतिशत मिला है।

इसके बाद तो घोटालों का एक युग ही शुरू हो गया। ऐड्रेक्स देवास डील, आदर्श सोसाइटी घोटाला, राष्ट्रमण्डल खेल घोटाला, एनआरएचएम घोटाला, 2जी स्पैक्ट्रम घोटाला, कोयला घोटाला, महाराष्ट्र का सिंचाई घोटाला यानी घोटालों की पूरी किताब बन गयी है।

आज जिन घोटालों की चर्चा हो रही है, उन्होंने घोटाला की परिभाषा ही बदल दी है। 60,000 करोड़ के राष्ट्रमण्डल खेल घोटाले, 1.75 लाख करोड़ के 2जी स्पैक्ट्रम घोटाले और 1.86 लाख करोड़ के कोयला घोटाले ने यह सिद्ध किया कि 500-1000 करोड़ का घोटाला तो कोई घोटाला ही नहीं है। 1996 में 1000 करोड़ का चारा घोटाला सामने आया जिसमें बिहार के मुख्यमंत्री लालू प्रसाद का नाम था।

1996 में 1000 करोड़ का चारा घोटाला सामने आया जिसमें बिहार के मुख्यमंत्री लालू प्रसाद का नाम था।

आगरा की बिजली व्यवस्था टोरंट नाम की निजी विद्युत कम्पनी के पास है। अभी कैग की रिपोर्ट ने खुलासा किया है कि टोरंट को तय सीमा से अधिक बिजली सस्ते दामों पर उपलब्ध करायी गयी है और उसने पिछले दो साल में राज्य को 789 करोड़ का चूना लगाया है। एक स्थानीय चैनल महीने भर तक (सी न्यूज) यह खबर दिखाता रहा कि टोरंट के प्रति स्थानीय लोगों में कितना अधिक गुस्सा है, कैसे कम्पनी दो-तीन हजार की जगह 10-12 हजार के बिल लोगों के पास भेज रही है। कैग की इस रिपोर्ट की राष्ट्रीय मीडिया में कोई चर्चा तक नहीं हुई। यहाँ तक कि राज्य की राजनीति में भी यह कोई मुद्दा नहीं बनी।

इस समय भ्रष्टाचार और घोटालों की भारतीय राजनीति में जो स्थिति है उसने यह साबित कर दिया है कि भ्रष्टाचार के मामले में कोई भी राजनीतिक दल किसी के पीछे नहीं हैं। काँग्रेस ने देश पर लम्बे समय तक शासन किया है, इसलिए घोटाले भी काँग्रेसियों ने ही अधिक किये हैं। भाजपा को जितना मौका मिला है, उस हिसाब से वह भी पीछे नहीं रही है। आज तक का सबसे बड़ा माना जाने वाला घोटाला कोयला घोटाला था। इस घोटले पर भाजपा काँग्रेस को घेर रही है। पूरी सच्चाई तो जाँच के बाद ही सामने आएगी पर उँगली तो उसके मुख्यमंत्रियों पर भी उठ रही है। अगर काँग्रेस के सांसद नवीन जिंदल जाँच के घेरे में हैं, तो भाजपा अध्यक्ष नितिन गड़करी के करीबियों को भी कोल ब्लॉक मिले हैं। काँग्रेस राष्ट्रमण्डल घोटाला व 2जी स्पैक्ट्रम घोटाले के लिए चर्चित रही, तो कर्नाटक में भाजपा चोटी तक भ्रष्टाचार में डूबी है। बेल्लारी के रेड्डी बंधु जो भाजपा के सांसद व विधायक हैं और सुषमा स्वराज के करीबी हैं, उन पर 16,000 करोड़ का खदान घोटाला करने का आरोप है। एक पुलिस कॉन्स्टेबल के घर पैदा होने वाले रेड्डी बंधु मात्र आठ-दस साल में ही वे कर्नाटक के सबसे धनी नेताओं में शुमार हो गये हैं। कर्नाटक की राजनीति पर गहरी पकड़ रखते हैं। खुद कर्नाटक के मुख्यमंत्री येद्युरप्पा को भ्रष्टाचार के चलते अपनी कुर्सी गवानी पड़ी।

अभी महाराष्ट्र में 70 हजार करोड़ का सिंचाई घोटाला सामने आया है। 1999 से सिंचाई विभाग शरद पवार की राष्ट्रवादी काँग्रेस पार्टी के पास है। इस मामले में राष्ट्रवादी काँग्रेस पार्टी से राज्य के उप मुख्यमंत्री व शरद पवार के भतीजे अजीत पवार को इस्तीफा देना पड़ा है। अंजलि नाम की एक सूचना अधिकार कार्यकर्त्ता का कहना है कि वे इस

मामले में विपक्षी पार्टी के राष्ट्रीय अध्यक्ष से मिली थीं कि उनकी पार्टी विधान सभा में इस प्रश्न को उठाए। इस पर राष्ट्रीय अध्यक्ष ने कहा कि वे इस मामले में कुछ नहीं कर सकते क्योंकि उन लोगों से उनके अच्छे सम्बन्ध हैं, चार काम उन लोगों के वे करते हैं और चार काम वे लोग उनके करते हैं। इस पर भाजपा अध्यक्ष व उद्योगपति नितिन गडकरी ने सूचना अधिकार कार्यकर्त्ता को कोर्ट का नोटिस देने की धमकी दी।

भाजपा व काँग्रेस के अतिरिक्त जो क्षेत्रीय पार्टियाँ हैं उनमें भी लगभग सभी पर भ्रष्टाचार के आरोप हैं। शिव सेना, राकांपा, बसपा, सपा, डीएमके, एडीएमके, इनेलो, अकाली दल, जद, जदयू, बीजद, झारखंड मुक्तिमोर्चा- सभी पार्टियों के नेताओं पर भ्रष्टाचार के आरोप हैं।

ऐसा नहीं माना जा सकता कि जिन पर भ्रष्टाचार के आरोप नहीं हैं वे बहुत ईमानदार हैं। दरअसल राजनीति में भ्रष्टाचार के जो मामले उजागर हुए हैं, वे तो पानी पर तैरती बर्फ का सतह पर दिखने वाला भाग भर हैं। इस बात को इस तरह समझा जा सकता है कि उत्तर प्रदेश में एनआरएचएम घोटाला सामने आया। इसमें माया सरकार के दो मंत्रियों को इस्तीफा देना पड़ा। यह घोटाला इसलिए सामने आया, क्योंकि लखनऊ में दो मुख्य चिकित्साधिकारियों की हत्या हो गयी और मामला सीबीआई के पास चला गया। दूसरी तरफ यह बताया जाता है कि मनरेगा में भ्रष्टाचार एनआरएचएम से भी कहीं अधिक है, परन्तु वह खुलकर सामने नहीं आया है।

दरअसल राजनीति में ईमानदारी अपवाद स्वरूप ही मिल सकती है, जबकि राजनीति की दाल में भ्रष्टाचार नमक की तरह घुल-मिल गया है। वरना राजनीति की दाल भ्रष्टाचार व घोटालों के साथ इस कदर घोट दी गयी है कि राजनीति की दाल में घुटे हुए घोटाले पहचान में नहीं आ पाते। हाँ अधिक घोटने के चक्कर में कभी-कभी दाल थोड़ी-बहुत जल जाती है, तो वह दाल में काला के रूप में नजर आने लगती है और वह घोटाला प्रकट हो जाता है।

एनजीओ यानी गैर सरकारी संगठनों का भ्रष्टाचार

एनजीओ (गैर सरकारी संगठन) आज के समय में बेहद प्रचलित शब्द है। आज हर क्षेत्र में सरकार जहाँ अपनी जिम्मेदारी से मुँह फेर रही है, वहाँ एनजीओ मोर्चा सम्भाले हुए हैं। कहा जाता था कि लोकतंत्र के चार स्तम्भ हैं, एनजीओ पूँजीवादी लोकतंत्र का पाँचवा स्तम्भ बन गया है। साठ के दशक के बाद साम्राज्यवादियों के चौधरी अमरीका ने तीसरी दुनिया के देशों पर अपनी आर्थिक उदारीकरण की नीतियाँ थोपना शुरू किया। इन नीतियों के कारण आम जनता पर दो तरह से असर पड़ा। पहला पूँजीपतियाँ द्वारा मेहनतकशों का शोषण बढ़ गया। राज्य व्यवस्थाएँ जनता को दी जाने वाली सहूलियतों से धीरे-धीरे हाथ खींचने लगीं। हर क्षेत्र में निजी पूँजी की घुस पैठ हो गयी।

निजी पूँजी लगाने वाले पूँजीपतियों का पूरा ध्यान अपने मुनाफे को अधिक से अधिक बढ़ाना ही है। उदाहरण के लिए आप बिजली विभाग को देख सकते हैं। जहाँ-जहाँ बिजली का निजीकरण हुआ है वहाँ जनता में त्राहि-त्राहि मची हुई है। दो-तीन हजार रुपये की जगह 10-12 हजार रुपये के बिल भेजे जा रहे हैं। उपभोक्ता के साथ हद दर्जा दुर्व्यवहार किया जा रहा है और बिल न दे पाने की स्थिति में कनेक्शन काटे जा रहे हैं। इतना ही नहीं सीएजी (कैग) की रिपोर्ट है कि आगरा में टोरंट ने दो साल में सरकार को 489 करोड़ का चूना लगाया है। निजीकरण की इस प्रक्रिया में भ्रष्टाचार के मामले भी बहुत अधिक बढ़ गये। इन सब ने आम जनता की मुश्किलें बेहद बढ़ा दीं।

अप्रैल 2009 में प्रसिद्ध अर्थशास्त्री अर्जुन सेन गुप्ता ने अपनी रिपोर्ट में कहा था कि भारत की 77 प्रतिशत जनता 20 रुपये प्रतिदिन से कम पर गुजर करती है। यह रिपोर्ट किसी संगठन या किसी व्यक्ति की राय नहीं है। सेन गुप्ता नेशनल इंटरप्राइजेज फोर अनऑर्गेनाइज्ड सेक्टर के चेयरमैन थे। उन्हें केन्द्रीय मंत्री का दर्जा प्राप्त था और मानवाधिकार आयोग के प्रतिनिधि के तौर पर संयुक्त राष्ट्र संघ में भारत का प्रतिनिधित्व कर चुके थे।

ऐसे में जब राज्य व्यवस्था जनता को दी जाने वाली सुविधाओं से हाथ खींचती जा रही है, सरकार से मिलने वाली सहूलियत में कटौती व भ्रष्टाचार से निरन्तर बढ़ती अव्यवस्था ने आम जनता की मुश्किलें बढ़ा दी हैं। ऐसे में एनजीओ को ये जिम्मेदारी सौंपी गयी है कि वह जनता में कुछ सहूलियत बाँटकर या सहूलियत देने का भ्रम पैदा कर उसमें किसी तरह का आक्रोश न पनपने दें।

भारत में उदारवादी आर्थिक नीतियों की शुरूआज 1990 में हुई। 1990 के बाद भारत में भी एनजीओ की बाढ़ सी आ गयी है। इस वक्त भारत में 33 लाख एनजीओ (विकीपीडिया के अनुसार) काम कर रहे हैं। यानी करीब चार सौ लोगों पर एक एनजीओ है। भारत में 1970 में अस्सी के दशक में 5.52 लाख एनजीओ पंजीकृत थे। नब्बे के दशक में 11.22 लाख नये एनजीओ पंजीकृत हुए। पिछले एक दशक में तो और अधिक एनजीओ पंजीकृत हुए हैं।

आज हर क्षेत्र में एनजीओ कार्यरत हैं। सेवा, शिक्षा, स्वास्थ्य, महिला एवं बच्चों की समस्याएँ, अकादमिक शोध क्षेत्र यानी आज कोई भी क्षेत्र एनजीओ से अछूता नहीं रह गया है। ऐसा नहीं है कि एनजीओ कार्यकुशल और ईमानदार संगठन होते हैं, इसलिए उन्हें ये मौके दिए जा रहे हैं। वास्तव में प्रशासन, राजनीति व कॉरपोरेट की ही तरह एनजीओ सबसे भ्रष्ट संस्थाएँ हैं। क्योंकि इनके काम पर किसी तरह का कोई नियंत्रण भी नहीं होता है, इसलिए ये अपने काम के प्रति एकदम जिम्मेदार और जवाबदेह नहीं होते। इसके बावजूद हर क्षेत्र में एनजीओ आ रहे हैं तो इसके पीछे एक बड़ी साजिश है।

हमारे देश में अधिकांश एनजीओ नेताओं एवं नौकरशाहों के बीवी, बच्चे, परिवार वाले या उनके सम्बन्धियों के हैं। इसकी बड़ी वजह यह है कि नेता और नौकरशाह अपने

इन एनजीओ के लिए न सिर्फ आसानी से सरकारी फंड जुटाने में सफल रहते हैं, बल्कि तमाम सरकारी ठेके भी इनके एनजीओ को आसानी से मिल जाते हैं। दरअसल एनजीओ के नाम पर लूट का एक नया तंत्र खड़ा कर लिया गया है। एनजीओ नेता व नौकरशाहों के नाकारा बीवी, बच्चे, रिश्तेदार सम्बन्धियों व दूसरे तिगड़मी लोगों की मोटी कमाई का अच्छा साधन सिद्ध हो रहे हैं। एनजीओ अपने आपको गैर सरकारी, गैर लाभकारी संगठन कहते हैं परन्तु फंडिंग के रूप में मोटा पैसा सरकार से लेते हैं और फंड का अधिकांश हिस्सा डकार जाते हैं।

भारत में एनजीओ को दिया जाने वाला फंड करीब एक लाख करोड़ रुपये हैं। भारत में एनजीओ को सर्वाधिक फंड सरकार द्वारा दिया जाता है। दूसरे नम्बर पर विदेशी एजेंसियाँ हैं। तीसरे नम्बर पर व्यक्तिगत दानदाता हैं। एनजीओ को फंड देने के पीछे सरकार का मकसद साफ है। पहला यह कि नेता और नौकरशाह, अपने परिजनों व सम्बन्धियों के नाम पर चलाये जा रहे एनजीओ के नाम पर बड़ी रकम सरकारी फंड के रूप में प्राप्त कर लेते हैं। दूसरे 10-20 प्रतिशत फंड वे जनता पर खर्च भी करते हैं, उससे सरकार द्वारा जनता को दी जाने वाली सुविधाओं में जो कटौती होती जा रही है, उससे जनता कुछ राहत महसूस करती है। लेकिन एनजीओ जो काम करते हैं, वह जनता को थोड़ी सहूलियत देने से ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। वे जनता में राज्य व्यवस्था के प्रति किसी भी तरह के आक्रोश को दबाने का काम करते हैं, वे जनता को यह समझाने की कोशिश करते हैं कि वे सरकार के भरोसे न बैठे रहें, अपनी समस्याएँ खुद ही हल करें, कि उनकी समस्याओं की असली वजह यह राज्य व्यवस्था नहीं है। एनजीओ फंड का उपयोग कैसे करते हैं इसका उदाहरण कैग की 2010 की एक रिपोर्ट से मिलता है। पर्यावरण मंत्रालय की एक ऑडिट रिपोर्ट में कैग ने खुलासा किया कि पौधे लगाने के नाम पर सरकार ने 597 करोड़ रुपये की योजनाएँ गैर सरकारी संगठन को सौंपी, लेकिन एक भी एनजीओ ने अपना काम पूरा नहीं किया। कैग ने कई बार सरकार को एनजीओ के काम-काज के बारे में चेताया है।

सरकार के बाद एनजीओ को दूसरे नम्बर पर सबसे अधिक फंड विदेशों से मिलता है। विदेशी संस्थाएँ जो फंड दुनिया भर के एनजीओ को देती हैं, वह इसलिए नहीं देती कि वे गरीब देशों की जनता की भलाई चाहती हैं। फंड देने के पीछे उनका अपना मकसद होता है। पश्चिमी देश विशेषकर अमरीका अपने शोषण एवं दमनकारी कार्यों के लिए पूरी दुनिया में बदनाम हैं। इस तरह के दान द्वारा अपनी छवि को थोड़ा अच्छा बनाना चाहता है। परन्तु इससे भी महत्त्वपूर्ण है कि ये देश दानदाता एजेंसियों के माध्यम से तीसरी दुनिया के देशों में अपने घृणित षड्यंत्रकारी इरादों को लागू करते हैं।

जैसे अमरीका की फोर्ड फाउंडेशन एनजीओ के लिए दान देने वाली सबसे बड़ी ऐजेसियों में से एक है। फोर्ड फाउंडेशन अपने आपको सामाजिक बदलाव के लिए काम

करने वाली संस्था कहती है। जिसका सालाना बजट 10 बिलियन डॉलर है और यह दुनिया भर की तमाम संस्थाओं को पैसा उपलब्ध कराती है।

1967 में इस बात का खुलासा हुआ था कि फोर्ड फाउंडेशन अमरीकी खुफिया एजेंसी सीआईए के साथ मिलकर काम करता है। सीआईए दर्जनों राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय संगठनों को फंड दिलवाता है। फांउडेशन के चेयरमैन (1958-65) ने स्वीकार किया था कि तीन लोगों की कमेटी सीआईए की सिफारिशों को लागू करवाती करती थी। सीआईए अमरीका की इतनी कुख्यात एजेंसी है, जो अमरीकी हितों के लिए दुनिया में किसी भी तरह का विध्वंस कर सकती है, यह सर्वविदित है।

ऐसे ही 1950 में काँग्रेस फॉर कल्चरल फ्रीडम नाम की संस्था बनी। इसे फोर्ड फाउंडेशन फंड उपलब्ध कराता था। यह सीआईए के इशारे पर काम करती थी। इसका उद्देश्य कम्युनिस्ट देशों के बारे में दुष्प्रचार करना, साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में वहाँ विध्वंसक कार्यों को बढ़ावा देना था। पूँजीवादी देशों का मुखिया होने के नाते अमरीका के स्वाभाविक शत्रु कम्युनिस्ट देश ही बनते हैं लेकिन ऐसा नहीं है कि दूसरे देशों में यह संगठन कोई रचनात्मक काम करता था। इसके कार्यालय 35 देशों में थे और कई तरह के प्रकाशन चलाते थे, तमाम गतिविधियाँ आयोजित करते थे। 1966 में न्यूयॉर्क टाइम्स ने एक लेख छापा था कि सीआईए गुप्त रूप से काँग्रेस फॉर कल्चरल फ्रीडम को फंड उपलब्ध कराता है। अंत में 1967 में रम्पर्ट ने फोर्ड फाउंडेशन और सीआईए के मठजोड़ का भंडाफोड़ किया था।

भारत में एनजीओ की फंडिंग का तीसरा सबसे बड़ा स्रोत व्यक्तिगत दानदाता यानी कॉरपोरेट जगत है। एनजीओ को इससे प्रतिवर्ष करीब 20 हजार करोड़ रुपये मिलता है। कॉरपोरेट एनजीओ को जो फंड देते हैं उसके पीछे कई कारण होते हैं। पहला कारण तो यही है कि आयकर की धारा 35 व 80जी के तहत दिये गये फंड पर 100 प्रतिशत आयकर की छूट मिलती है और कम्पनियाँ इस तरह काफी पैसा आयकर छूट के रूप में बचा लेती हैं। इसके अलावा कम्पनियाँ अपने व्यवसायिक हितों के लिए भी एनजीओ का इस्तेमाल करती हैं।

आज एनजीओ का दखल सिर्फ सेवा कार्यों में ही नहीं है वे शिक्षा, अकादमी शोध आदि सभी क्षेत्रें में दखलंदाजी रखते हैं। कॉरपोरेट अपनी सुविधानुसार एनजीओ के माध्यम से शोध कार्य विकसित करा रहा है। सूचना अधिकार कार्यकर्ता, समाज सेवी, आंदोलनकारी, यानी सब कुछ अब एनजीओ चलाने वाले ही हो गये हैं। कुछ अपवादों को छोड़ दिया जाय तो सभी एनजीओ भ्रष्ट हैं, कमाई करने का एक गोरखधंधा है और कॉरपोरेट के हितों के लिए कार्य करने वाले हैं।

अभी आज तक चैनल ने कानून मंत्री सलमान खुर्शीद के एनजीओ जाकिर हुसैन ट्रस्ट पर 71 लाख का फर्जीवाड़ा करने का आरोप लगाया है। यह एनजीओ उत्तर प्रदेश के कई जिलों में विकलांगों के लिए काम कर रहा था।

सितम्बर 2011 में तरुण विजय की नजदीकी सोहेला मसूद की हत्या हुई थी। सोहेला मिरेकल नाम से एनजीओ चलाती थीं और उनकी पहचान एक सूचनाधिकार कार्यकर्ता के रूप में थी। जाँच के दौरान कई बातों का खुलासा हुआ। जैसे भाजपा सांसद, प्रवक्ता व पांचजन्य के पूर्व संपादक तरुण विजय के एनजीओ डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी रिसर्च फाउंडेशन को मध्य प्रदेश सरकार ने 2010 में 25 लाख का अनुदान दिया। मीडिया में इस तरह की खबरें आयीं कि मध्य प्रदेश सरकार तरुण विजय के मुकाबले दूसरे भाजपा सांसद अनिल माधव दुबे के एनजीओ नर्मदा समग्र को अधिक फंड दे रही थी और तरुण विजय की उपेक्षा कर रही थी। तरुण ने अपनी करीबी सूचना अधिकार कार्यकर्ता सोहेला मसूद के द्वारा अनिल माधव दुबे के एनजीओ नर्मदा समग्र को मिलने वाले फंड के बारे में आरटीआई डाल रखी थी। दरअसल आज अधिकांश एनजीओ कॉरपोरेट के हितों के लिए व अपने निजी फायदों के लिए सूचना अधिकार के क्षेत्र में काफी सक्रिय हैं। इसका एक फायदा यह भी है कि मुफ्त में उन्हें कार्यकर्ता और समाज सेवी का तमगा मिल जाता है।

दरअसल अपवाद स्वरूप कुछ एनजीओ को छोड़ दिया जाय, जो वास्तव में थोड़ा-बहुत जनहित का काम भी कर रहे हैं, तो एनजीओ के नाम पर पूरे देश में एक लूट सी मची हुई है। इस लूट से भी ज्यादा खतरनाक यह है कि एनजीओ लोगों के दिमाग में एक घटिया सोच भर रहे हैं, नकली सक्रियतावाद के द्वारा समाज सेवा व जनहित का झूठा भ्रम जनता में पैदा कर रहे हैं।

जैसे एक एनजीओ कार्यकर्ता एक खास ब्रांड के शीतल पेय के विरुद्ध आंदोलन चलाता है और यह सिद्ध करता है कि इसमें यूरिया जैसे हानिकारक पदार्थ हैं और वह कार्यकर्ता आसानी से अपनी समाज सेवी की छवि बना ले जाता है कि उसने उस ब्रांड की सच्चाई खोल कर कितना जनहित का काम किया है। पर जनता यह नहीं समझ पाती कि वह कार्यकर्ता हानिकारक शीतल पेय पदार्थों के विरुद्ध नहीं है बल्कि एक खास ब्रांड के विरुद्ध है।

न्यायपालिका में भ्रष्टाचार

2002 में देश के पूर्व मुख्य न्यायाधीश जस्टिस एसपी भरूचा ने कहा था कि उच्च न्यायालय में 20 फीसदी न्यायाधीश भ्रष्ट हैं।

''उत्तर प्रदेश में इलाहाबाद हाई कोर्ट में कुछ न्यायाधीशों की ईमानदारी संदेहास्पद है। मुख्य न्यायाधीश को ऐसे संदिग्ध न्यायाधीशों का तबादला करना चाहिए।'' जस्टिस मार्केण्डेय काटजू।

अभी कुछ समय पहले ही पूर्व मंत्री व वकील शांति भूषण व मुलायम सिंह की सीडी का मामला प्रकाश में आया था, जिसमें वे न्यायाधीशों के भ्रष्ट होने की व अपने बेटे द्वारा उन्हें मैनेज करने की बात कह रहे थे।

जस्टिस पीडी दिनाकरण ने तमिलनाडु उच्च न्यायालय का न्यायाधीश रहते करोड़ों की सरकारी जमीन पर कब्जा किया। 2010 में उनके विरुद्ध संसद में महाभियोग लाया गया।

जस्टिस निर्मल यादव पर पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय की न्यायाधीश रहते हुए 2008 में 15 लाख की रिश्वत लेने का आरोप लगा। सीबीआई को उनके खिलाफ सबूत मिले।

पंजाब एवं हरियाणा हाई कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश जस्टिस वी रामास्वामी ने पद पर रहते हुए भ्रष्टाचार किया। सीबीआई ने उनके घर से काफी रकम बरामद की। संसद में उनके विरुद्ध 1991 में महाभियोग लाया गया जो असफल रहा।

दिल्ली हाई कोर्ट में अस्थाई न्यायाधीश शर्मित मुखर्जी ने 2003 में पैसा लेकर एक रेस्टोरेंट मालिक के हक में फैसला दिया। अस्थाई होने के कारण सर्वोच्च न्यायालय ने उन्हें सीधे बर्खास्त कर दिया।

कोलकाता उच्च न्यायालय के न्यायाधीश सौमित्र सेन के विरुद्ध भ्रष्टाचार के आरोप थे। उनके खिलाफ 2008 में महाभियोग प्रस्ताव लाया गया।

ये कुछ उदाहरण हैं जिनसे पता चलता है कि न्यायाधीश भी दूसरे नौकरी पेशाओं की तरह भ्रष्ट होते हैं। वास्तव में न्यायाधीश किसी दूसरे ग्रह पर नहीं रहते हैं। वे इसी समाज का हिस्सा हैं। सामाजिक मूल्यों में जो गिरावट आ रही है, वह व्यक्ति के चरित्र में भी आती है, यदि वह उसी समाज का हिस्सा है। अगर न्यायाधीश इसी समाज का हिस्सा है तो यह कहना समाजशास्त्र के ही विरुद्ध हो जाएगा कि न्यायाधीश भ्रष्ट नहीं हो सकते।

न्यायपालिका भी एक सरकारी विभाग है और जैसे हर सरकारी विभाग में भ्रष्टाचार का बोलबाला है वैसे ही न्यायपालिका में भी है। वहाँ भी बाबू से लेकर अधिकारियों तक वैसे ही भ्रष्ट हैं, जैसे दूसरे विभागों में होते हैं। हाँ इतना जरूर है कि न्यायाधीश का पद दूसरे विभाग के अधिकारियों से थोड़ा भिन्न है। इसलिए एक न्यायाधीश एक पुलिस इंस्पेक्टर की तरह भ्रष्ट नहीं हो सकता। लेकिन एक बात विचारणीय है। अगर हम समाज में देखते हैं कि न्याय हमेशा पैसे वाले और ताकतवर को मिलता है, गरीब और कमजोर को कभी न्याय नहीं मिलता, तो इसका मतलब सिर्फ यह नहीं है कि ताकतवर अपनी ताकत के बल पर न्याय प्रक्रिया को अपने पक्ष में कर लेते हैं और इसका पूरा दोष जाँच एजेंसी पर जाता है। भ्रष्टाचार की इस कड़ी में जाँच एजेंसी पुलिस से लेकर फैसला लिखने वाले न्यायाधीश तक, सब शामिल होते हैं और फिर यह बात तो तमाम सर्वेक्षणों में आ ही चुकी है कि उच्च अदालतों की तुलना में निचली अदालतों में बहुत अधिक भ्रष्टाचार है। यह बात भी सही नहीं है कि ताकतवर लोग गवाह-सबूत अपने पक्ष में कर लेते हैं और न्यायाधीश उनके आधार पर फैसला देने के लिए विवश हैं इसलिए कमजोर तबके को न्याय न मिलने के पीछे न्याय प्रक्रिया ही दोषी है। दरअसल उन्हें काफी संवैधानिक

शक्ति प्राप्त है, जैसे- जमानत के मामलों में। दूसरी चीज है उनकी जवाबदेही का अभाव। फैसला देना उनका एकाधिकार है। फैसला देने के बाद उनकी कोई जबाबदेही नहीं होती। आप ऊपर की अदालत में जाकर सिर्फ अपील कर सकते हैं। कुछ बहुचर्चित मामलों का उदाहरण लेते हैं।

भंवरी देवी बलात्कार केस काफी चर्चित केस रहा है। जयपुर के पास भतेरी गाँव की एक महिला भंवरी देवी का गुर्जर जाति के लोगों ने गिरोहबन्द बलात्कार किया। 1992 की इस घटना पर 1995 में जिला सत्र न्यायाधीश ने जिन आधारों पर फैसला दिया वे थे - आरोपी उच्च जाति के लोग हैं और वे दलित महिला का बलात्कार नहीं कर सकते। महिला का पति निष्क्रिय होकर पत्नी का गिरोहबन्द बलात्कार होते नहीं देख सकता।

ये दलीलें कितनी वाहियात हैं, यह बात एक सामान्य बुद्धि का अनपढ़ व्यक्ति भी समझ सकता है।

जेसिका लाल हत्याकाण्ड जो मीडिया में बेहद चर्चित रहा था, उसका फैसला 2006 में आया। निचली अदालत ने आरोपी को बरी कर दिया। 1999 की इस घटना को मीडिया ने पहले से ही इतना चर्चित कर रखा था कि अदालत का फैसला खुद मीडिया के गले नहीं उतर सका। उसके बाद मीडिया ने जो अभियान चलाया उससे अदालत के फैंसले की बहुत थू-थू हुई। उसके बाद उच्च न्यायालय ने इस मामले को त्वरित न्याय के लिए गठित विशेष अदालत में डाल कर 25 दिन में आरोपी को आजीवन करावास की सजा सुना दी।

एक अन्य चर्चित मामले (प्रियदर्शनी मट्टू हत्याकाण्ड) के अपराधी एक आईएएस के बेटे को निचली अदालत ने बाइज्जत बरी कर दिया था। बाद में उच्च न्यायालय ने उसे मृत्युदण्ड की सजा सुना दी।

इन मामलों से पता चलता है कि फैसले सिर्फ गवाह और सबूतों के आधार पर ही नहीं लिए जाते हैं, फैसले देने में न्यायाधीश की भी बड़ी भूमिका होती है लेकिन वह उसके लिए जवाबदेह नहीं है। दरअसल ये उदाहरण तो जानी-मानी हस्तियों से जुड़े थे और मीडिया का इनमें बहुत दबाब था, लेकिन तमाम कमजोर लोगों के विरूद्ध ताकतवर लोग अपने पक्ष में न्याय खरीद कर उन्हें हमेशा के लिए न्याय से वंचित कर देते हैं। सच यह है कि कोई गरीब आदमी आज के समय में न्यायालय पर विश्वास नहीं करता।

धार्मिक क्षेत्र का भ्रष्टाचार

आज के समय में धर्म भ्रष्टाचार के लिए बहुत ही उर्वर क्षेत्र है। धर्म एक उद्योग-धंधा बन गया है और इसे चलाने वाले महारथियों के पास दौलत के अम्बार लगे हुए हैं। इस भारत भूमि पर आए दिन दिव्य पुरुषों, भगवानों का अवतरण होता रहता है और रोज ही इन भगवानों के गोरखधंधों की पोल खुलती रहती है। साई बाबा, जय गुरूदेव, आसाराम, रामदेव, निर्मल बाबा कितने ही ऐसे नाम हैं, जिन्होंने धर्म के नाम पर अथाह दौलत इकट्ठी की है।

अभी केरल के तिरूअनन्तपुरम मंदिर में जो तहखाने खोले गये हैं, उनमें करीब 175 अरब डॉलर का खजाना मिला है। अभी सारे तहखाने खोले भी नहीं गये हैं। इस मंदिर पर राजसी नियंत्रण है। सम्पत्ति चाहे जैसे इकट्ठी की गयी हो, यह समाज और जनता की सम्पत्ति है।

पिछले वर्ष सत्य साई बाबा का देहांत हुआ। उनके मरने के बाद उनके तमाम घोटाले सामने आये। जैसे मुँह से शिवलिंग निकालना, हवा में हाथ लहरा के घड़ी पैदा करना। हैदराबाद दूरदर्शन केन्द्र ने मुँह से शिवलिंग निकालने का फर्जीवाड़ा कैमरे में कैद किया था। जादूगर पीसी सरकार ने साई बाबा की जादू वाली इस तरकीब का पर्दाफाश किया था। इसके बावजूद साई बाबा का जादू चलता रहा। उनके ट्रस्टों के पास 40 हजार करोड़ की सम्पत्ति जमा है। इसके अलावा कितनी ही सम्पत्ति और है जिसका हिसाब-किताब नहीं है। लोगों को जादुई तरीके से चीजें पैदाकर प्रभावित करना फिर षड्यंत्र के तहत उनके दिमाग में अपने प्रति भगवान होने की आस्था पैदा करना और उसके बाद उस आस्था का लाभ उठाकर बेशुमार दौलत इकट्ठी करना- इस पूरे मामले को धर्म, बाबा और लोगों के बीच का निजी मामला बताकर नजरंदाज नहीं किया जा सकता।

18 मई को मथुरा के बाबा जय गुरूदेव का देहांत हुआ। वे अपने शिष्यों को टाट के कपड़े पहनने की नसीहत देते थे। जबकि खुद एक राजसी जीवन जीते थे, पेट्रोल पंप चलाते थे, दूरदर्शी नाम की राजनीतिक पार्टी चलाते थे। उनकी मौत के बाद उनकी सम्पत्ति 12,000 करोड़ रुपये आँकी गयी थी।

एक बाबा रामदेव हैं, जो गेरूआ वस्त्र पहनते हैं, योग शिक्षा देते हैं। उनका विराट व्यापारिक साम्राज्य है। दिव्य मंदिर ट्रस्ट जो अचार-मुरब्बा से लेकर शक्तिवर्धक गोलियाँ तक बेचता है, उनके नाम 13 अरब की सम्पत्ति है। रामदेव पर मनीलोंड्रिंग (काला धन सफेद करने) सहित तमाम मुकदमें दर्ज हैं और उनकी जाँच चल रही है। बताया जाता है कि बाबा रामदेव के ट्रस्टों के पास पचास अरब से ज्यादा की सम्पत्ति है। यह सम्पत्ति उन्होंने सिर्फ आठ-दस साल में इकट्ठी कर ली है।

आसाराम बापू जो प्रवर्चन देने का काम करते हैं। वे पब्लिक स्कूल चलाते हैं। व्यवसायिक गतिविधियाँ संचालित करते हैं। यहाँ तक कि उनके ऊपर आपराधिक मुकद्दमें चल रहे हैं।

एक निर्मल बाबा हैं जो काले पर्स में भरकर कृपा बाँटते हैं। गोलगप्पे खिलाकर लोगों की समस्याएँ हल करते हैं।

12 मई 2012 को दैनिक भास्कर ने एक खबर छापी है- निर्मल बाबा ने डेढ़ महीने में खरीदी सत्तर करोड़ की प्रोपर्टी, एक ही दिन में चुकाए 34 करोड़। खबर है कि निर्मल बाबा ने डीएलएफ से 49 करोड़ की डील की। पंजाब नेशनल बैंक में अपने असली नाम निर्मजीत सिंह नरूला के नाम से बैंक खाता (1546000102129694) है। इस खाते से

सात अप्रैल को 14.88 करोड़ का 28 अप्रैल को 2.06-2.06 करोड़ के दो और 15-15 करोड़ के अन्य दो बैंक ड्राफ्ट बनवाये गये। पिछले सप्ताह भोंडसी में छः एकड़ ग्यारह कनाल जमीन 21 करोड़ 11 लाख 92 हजार 500 रुपये में खरीदी गयी।

जैसे आज तमाम घोटाले आये दिन खुल रहे हैं और हर पार्टी के नेताओं के नाम बड़े-बड़े घोटालों से जुड़े हैं, वैसे ही धार्मिक भ्रष्टाचार के ये कुछ बड़े-बड़े नाम हैं। वरना धार्मिक भ्रष्टाचार का जो नेटवर्क है वह वैसा ही जैसे शासन प्रशासन में व्यापक रूप से भ्रष्टाचार फैला है। मंदिरों में लाखों-करोड़ों का चढ़ावा चढ़ाया जाता है, उसका कोई हिसाब-किताब नहीं है। धर्म स्थलों के नाम पर लोग चाहे जहाँ लाखों-करोड़ों की जमीन हथिया लेते हैं। काशी, मथुरा, सोरों, इलाहाबाद जैसे तमाम धार्मिक जगहों पर जिस तरह की पंडे-पुजारी लूट-पाट मचाये हुए हैं वह भ्रष्टाचार नहीं तो भला और क्या है?

कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में श्रेया अय्यर ने भारत के 568 धार्मिक संगठनों पर शोध किया जिसमें यह बात सामने आयी कि धार्मिक संगठनों में व्यापारिक संगठनों जैसी ही कड़ी प्रतिस्पर्धा होती है।

मीडिया का भ्रष्टाचार

यहाँ मीडिया से मतलब मुख्य धारा की मीडिया से है जो समाज पर व्यापक असर डालता है। मुख्य धारा की मीडिया कॉरपोरेट मीडिया के नाम से भी जाना जाता है। कॉरपोरेट यानी पूँजीपतियों द्वारा संचालित मीडिया। पूँजीपति जो काम करता है, वह सिर्फ मुनाफे के लिए करता है। उसके काम में गलत और सही का कोई मानदण्ड नहीं होता। जो काम उसके मुनाफा में इजाफा करता है वही सही है। इस तरह मीडिया में भ्रष्ट तौर-तरीके अपनाया जाना व्यापार का एक सामान्य सिद्धांत ही है। मीडिया उससे अलग नहीं है। इसके बावजूद मीडिया में व्याप्त भ्रष्टाचार को अलग से देखने की जरूरत है, तो इसलिए कि मीडिया आज समाज में चाहे जैसी भी भूमिका अदा कर रहा हो, परन्तु उससे यह उम्मीद की जाती है कि वह समाज को बेहतर बनाने में भूमिका निभाए। मीडिया के सरोकार समाज को सीधे प्रभावित करते हैं।

मीडिया से जो भी उम्मीद की जाय पर वह इसी लोकतांत्रिक समाज का हिस्सा है, जिसमें भ्रष्टाचार से मुक्त कुछ भी नहीं है। मीडिया में भी स्थान, पद आदि के अनुसार कई तरह के भ्रष्टाचार हैं। तमाम राजनेता पत्रकारों को काफी सुविधाएँ देते हैं।

2007 में मैं उत्तराखण्ड के गौरीकुंड गाँव में कार्यरत था। मई में जब केदारनाथ के पट खुले तो स्वास्थ्य मंत्री दौरे पर आये थे। मुख्य चिकित्साधिकारी कार्यालय के एक जिम्मेदार व्यक्ति ने अनौपचारिक बातचीत में मुझे बताया कि स्वास्थ्य मंत्री के रुद्रप्रयाग से केदारनाथ (94 किलोमीटर) तक का जो खर्च आया है, वह एक लाख रुपये से ऊपर है, जिसे मुख्य चिकित्साधिकारी को चुकाना है। पत्रकारों की फौज जो स्वास्थ्य मंत्री के

साथ चल रही थी, उन्होंने गाड़ियों की टंकियाँ तो फुल करायी ही साथ में कैन भी फुल करा कर ले गये।

खबर बनने से लेकर खबर के छपने या प्रसारित होने तक की अपनी एक प्रक्रिया है। कौन सी खबर छपनी है, किसकी खबर छपनी है, किसकी नहीं छपनी है, किस खबर को कितना दिखाना है, इन तमाम प्रक्रियाओं से गुजरते हुए एक खबर जनता तक पहुँचती है। खबरों को दबाना, उन्हें गलत तरीके से प्रसारित करना, खबर छापने की धमकी देकर दूसरी पार्टी को ब्लैकमेल करना इन सब के बदले मीडियाकर्मी पैसे वसूलते हैं। तमाम पत्रकारों के वेतन और उनकी सम्पत्ति में कोई सामजस्य नहीं होता। यह सम्पत्ति भ्रष्ट तरीकों से ही कमाई गई होती है।

मीडिया में कुछ सालों से पेड न्यूज की काफी चर्चा रही है। पेड न्यूज यानी पैसे देकर खबर छपवाना। 2009 के आम चुनाव में पेड न्यूज का मामला बेहद चर्चित रहा। प्रेस काउंसिल ऑफ इंडिया ने 2010-2011 की अपनी रिपोर्ट में पेड न्यूज के बारे में लिखा है- पैसे देकर खबर छापने की परिघटना ने गम्भीर आयाम ग्रहण किया है। आज यह व्यक्तिगत पत्रकारों और मीडिया कम्पनियों के भ्रष्टाचार से आगे निकल गया है और यह बहुत ही विस्तृत, ढाँचागत और बेहद संगठित हो चुका है।

2009 के आम चुनाव में यह बात सामने आयी कि नेता और मीडिया में सौदेबाजी हुई है जिसके अनुसार पैसे के बदले उनके चुनाव प्रचार की खबर दी जा रही है।

दरअसल मीडिया इस भ्रष्ट व्यवस्था का ही हिस्सा है। कॉरपोरेट, राजनीति, सरकारी मशीनरी भ्रष्ट है और मीडिया दूसरों के भ्रष्टाचार की खबरें छापता है या दिखाता है। अपनी सुविधानुसार दूसरों के स्टिंग ऑपरेशन करता है, परन्तु अपनी खबरों को वह कवर नहीं करता। इसलिए वे जनता के बीच नहीं पहुँच पा रहीं। 2010-11 में 2जी घोटाला इतना चर्चित रहा। आपने राजा, कनिमोझी, राडिया के बारे में खूब सुना होगा। हिंदुस्तान के वीर सिंघवी, इंडिया टुडे के प्रभु चावला, एनडीटीवी की पद्म श्री बरखा दत्त का नाम भी इस घोटाले से जुड़ा था, लेकिन ये लोग चर्चाओं से गायब ही रहे।

पिछले दिनों जी न्यूज के सम्पादक सुधीर चौधरी व समीर आहलूवालिया को गिरफ्तार किया गया। उन पर कोयला घोटाले में घिरे नवीन जिंदल ने यह आरोप लगाया कि उनसे जुड़ी खबरें रोकने के लिए इन्होंने 100 करोड़ रुपये का सौदा करना चाहा। जिंदल ने इन दोनों के खिलाफ एफआईआर की थी और अपनी बातचीत की एक सीडी भी प्रस्तुत की थी।

सेना में भ्रष्टाचार

सेना एक सरकारी विभाग है और हर सरकारी विभाग की तरह इसमें भी भ्रष्टाचार है। लेकिन सेना के भ्रष्टाचार पर बात करना दो वजहों से मुझे उचित लगता है। पहली

तो यही कि सेना को दूसरे विभागों की अपेक्षा आदर्श व उच्च सामाजिक मूल्यों से परिपूर्ण माना जाता है। आम जनता में पुलिस की छवि जितनी गिरी हुई है, सेना की छवि उतनी ही ईमानदार होती है। दूसरे सेना की दुनिया मुख्य समाज की दुनिया से अलग होती है और इसलिए ऐसा सोचा जा सकता है कि सामाजिक मूल्यों में जो गिरावट आ रही है, सेना पर शायद उसका इतना असर न हो। लेकिन सेना भी अंततः है तो समाज का ही हिस्सा। भले ही वहाँ सामाजिक मूल्यों का इतनी तेजी से होता क्षरण न दिखायी देता हो, परन्तु वह उस से अछूती तो नहीं रह सकती। बल्कि हो यह रहा है कि सेना में भी एक के बाद एक घोटाला खुलकर सामने आ रहे हैं।

कुछ समय पहले ही टाट्रा ट्रक सौदे में जनरल वीके सिंह को 14 करोड़ की रिश्वत की पेशकश का मामला काफी चर्चित रहा। वीके सिंह ने रक्षा मंत्री को इस बारे में पत्र लिखा था। इस सौदे की पेशकश कम्पनी की तरफ से एक भूतपूर्व जनरल के माध्यम से हुई थी।

राजग सरकार के समय जब जॉर्ज फर्नांडीज रक्षा मंत्री थे, तब एक स्टिंग ऑपरेशन के दौरान ताबूत घोटाला चर्चा में था और यह बात सामने आयी कि रक्षा सौदों में नेताओं व सेना के अफसरों द्वारा किस तरह दलाली की जाती है।

आदर्श सोसाइटी घोटाला जो मुंबई में 31 मंजिला 104 फ्लैट के घोटाले की कहानी है, इसमें सेना के कई अफसरों के नाम हैं।

2010 में आयुध फैक्ट्री घोटाला सामने आया, जिसमें 10 साल के लिए छः आयुध फैक्ट्री को काली सूची में डाल दिया गया।

2011 में ऊँचे इलाकों में राशन सप्लाई में घोटाले के दोषी लेफ्टिनेंट जनरल एसके साहनी को 2011 में सेना की सेवा से बर्खास्त किया गया।

सुखना मिलिट्री स्टेशन के पास सिलिगुड़ी पश्चिम बंगाल में 70 एकड़ जमीन का मामला काफी चर्चित रहा। यहाँ 70 एकड़ जमीन शिक्षा संस्थान के लिए एक निजी ट्रस्ट को दे दी गयी। इसमें दो लेफ्टिनेंट जनरल का कोर्ट मार्शल किया गया और उसके बाद एक को बर्खास्त कर दिया गया।

सेना के ये कुछ चर्चित घोटाले हैं। सेना में अन्दर भ्रष्टाचार भी वैसा ही बताया जाता है जैसा आम समाज में होता है।

क्रिकेट में भ्रष्टाचार

क्रिकेट एक खेल है, लेकिन हमारे देश में यह जुआ, सट्टेबाजी और काले धन को सफेद करने का एक धंधा बन गया है। देश में कई खेलों में खिलाड़ियों को सुविधाओं का नितांत अभाव है और इन सुविधाओं के चलते खिलाड़ी अपनी प्रतिभाओं का सही उपयोग नहीं कर पा रहे हैं, वहीं क्रिकेट में पैसा ही पैसा है। एक-एक क्रिकेटर को करोड़ों

रुपये मिलते हैं। खिलाड़ियों के चयनकर्ताओं को 60 लाख रुपये सालाना मिलता है। कहा जा सकता है कि भारतीय क्रिकेट कंट्रोल बोर्ड एक निजी संस्था है। उसके पास अकूत संसाधन हैं और वह अपने खिलाड़ियों, चयनकर्ताओं, उद्घोषकों, प्रशिक्षकों आदि को मोटी रकम देता है। सवाल यह है कि ये पैसा कहाँ से आ रहा है, उसकी पूरी जाँच होनी चाहिए। आखिर हमारे देश में एक लोकतांत्रिक राज्य व्यवस्था है (यदि है) और हर तरह की गड़बड़ पर निगाह रखना, उसे रोकना राज्य की जिम्मेदारी है।

जब से इंडियन प्रीमियर लीग बना, खिलाड़ियों की खरीद बिक्री शुरू हुई और क्रिकेट टीमों को निजी कम्पनी की तरह चलाया जाने लगा, तब से क्रिकेट में सट्टेबाजी और भ्रष्टाचार सारी हदें पार कर चुका है। ताजा उदाहरण श्रीसंत, शिल्पा सेठ्ठी और उनके पति राज कुन्द्रा द्वारा सट्टेबाजी में लिप्त होने का खुलासा है। क्रिकेट अब खेल न होकर काली कमाई का कुख्यात क्षेत्र बन गया है।

क्रिकेट में भारी मात्रा में धांधली है, यही कारण है कि आज तमाम राजनेता और अवैध कमाई करने वाले क्रिकेट से जुड़ना चाहते हैं। अरुण जेटली, लालू, ज्योतिरादित्य सिंधिया से लेकर शरद पवार तक कितने ही नेता हैं जो विभिन्न क्रिकेट बोर्डों से जुड़े हैं। क्रिकेट में पैसा जहाँ से भी आता हो, यह पैसा तो जनता का ही है। इसलिए राज्य व्यवस्था का यह दायित्व है कि वह गड़बड़ घोटालों के बीच खेले जा रहे इस खेल की गहराई से जाँच करें।

काला धन

पिछले 8-9 मई को सीएनएन-आईबीएन चैनल ने स्विटजरलैंड के स्विस बैंकिंग एसोसिएशन की रिपोर्ट 2006 के हवाले से उजागर किया कि भारतीयों ने स्विस बैंकों में 1456 अरब डॉलर जमा कर रखे हैं। स्विस बैंकों में अन्य तमाम देशों के लोगों की जमा राशि को मिलाकर भी इतनी राशि नहीं है जितनी अकेल भारतीयों की है। किसी विदेशी बैंक में खाता खोलने के लिए भारतीयों को भारतीय रिजर्व बैंक की इजाजत लेनी होती है, लेकिन स्विटजरलैंड में खाता खोलने के लिए ऐसी कोई इजाजत नहीं ली जाती है। जाहिर है यह गलत तरीकों से अर्जित काला धन है।

करीब दशक भर पहले आउटलुक पत्रिका ने 26 मार्च 1997 के अंक में स्विटजरलैंड के दिल्ली दूतावास के उप प्रमुख का बयान छापा था कि भारतीयों का स्विस बैंकों में जमा धन 28,000 करोड़ रुपये के बराबर है। इसके करीब दशक भर पहले भारतीय अर्थव्यवस्था पर विश्व बैंक की 1986 की रिपोर्ट के हवाले से अर्थशास्त्री बीएम भारतीय ने अपनी किताब इंडियाज मिडिल क्लास (पेज न. 79) में बताया था कि स्विस बैंकों में जमा भारतीय काला धन 1,300 करोड़ रुपये हैं।

ये आँकड़े जिन तीन स्रोतों से निकले हैं वे आधिकारिक हैं, इसलिए इन पर भरोसा न करने की कोई वजह नहीं है। इनसे पता चलता है कि 1986 से लेकर 2006 तक भारतीयों द्वारा स्विस बैंकों में जमा धन में जबरदस्त बढ़ोत्तरी हुई है। ये आँकड़े चौकाने वाले लग सकते हैं। लेकिन नहीं लगेंगे यदि हम याद करें कि स्विटजरलैंड की प्रतिष्ठित पत्रिका स्वाइजर इलस्ट्रांयटी ने 11 नवंबर 1991 को बताया था कि पूर्व प्रधानमंत्री राजीव गाँधी के स्विज बैंक खातों में 4625 करोड़ रुपये जमा हैं और उनका नाम स्वीडन, स्विटजर लैंड, फ्रांस और ब्रिटेन की राजधानियों में कुख्यात है। वे तीसरी दुनिया के उन 14 पूर्व शासकों को सूची में शुमार हैं जिन्होंने स्विज बैंकों के गोपनीय खातों में धन छिपा रखा है। इसका जिक्र प्रसिद्ध लेखक एजी नूरानी ने 31 जनवरी 1999 को स्टेट्समेन में छपे अपने लेख में भी किया था। (फिलहाल अगस्त-सितम्बर 2008 के सम्पादकीय से)।

भारतीयों का स्विटजरलैंड के बैंकों में काफी धन जमा है यह बात लम्बे समय से देश की जनता जानती है। लेकिन स्विस बैंक एसोसिएशन ने 2006 में अपनी रिपोर्ट में जब यह कहा कि भारतीयों का 1,456 अरब डॉलर स्विस बैंकों में जमा है तो भारतीय मीडिया में इसकी चर्चा होने लगी। बाद में राजनीति में आने का प्रयास कर रहे बाबा रामदेव ने इसे मुद्दा बनाने की कोशिश की।

स्विस बैंकों में ही 2006 तक भारतीयों का 1,456 अरब डॉलर जमा था जो अब तक और बढ़ गया होगा। स्विटजरलैंड के अलावा दूसरे यूरोपीय देशों में भी भारतीयों का

पैसा बताया जाता है। अगर सिर्फ स्विस बैंकों में जमा धन की बात की जाये तो वह 2006 में 1,456 बिलियन डॉलर था। अगर एक डॉलर 50 रुपये का माना जाय तो यह रकम 72,800 अरब रुपये होती है जो हमारे कुल सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) के बराबर है। यानी भारत जैसे देश की जो कुल जीडीपी है उतनी रकम स्विस बैंकों में अवैध धन के रूप में पड़ी है।

यह पैसा किन लोगों का है यह समझना मुश्किल काम नहीं है। देश में सबसे अधिक पैसा तो बड़े पूँजीपतियों के ही पास है। लेकिन पूँजीपति पैसे को इस तरह फँसाए रखना पसंद नहीं करेगा। उसका उद्देश्य पैसे को उद्योग में लगाकर उससे मुनाफा कमाने का होता है। तो यह पैसा राजनेता, नौकरशाह, अभिनेता और हसन अली जैसे व्यापारी का ही होना चाहिए। यह पैसा हर्षद मेहता और नीरा राडिया जैसे दलालों का होना चाहिए।

समय-समय पर प्रकाशित खबरों से पता चलता है कि काले धन में जो बेतहासा वृद्धि हुई है उसमें नब्बे के दशक में तेजी आयी थी और सदी के पहले दशक में वह बहुत तेजी से बड़ा है। नेता, नौकरशाह और पूँजीपतियों के गठजोड़ ने इस देश में लूट मचा दी है। जमीन, सार्वजनिक संपत्ति और प्राकृतिक संसाधनों को कम्पनियों, नेताओं, नौकरशाहों और उनके बीच के दलालों ने मिल कर लूटा है। अब एक-दो करोड़ के घोटाले को नेता इसलिए घोटाला नहीं मानते कि यह रकम बहुत कम है। अब लाखों करोड़ के घोटालों को ही घोटाला माना जाता है।

60 हजार करोड़ का राष्ट्रमण्डल खेल घोटाला सुरेश कलमाड़ी ने किया। उसके बाद 2जी घोटाला 1.72 लाख करोड़ का हुआ। इसमें संचार मंत्री ए राजा और उसकी बहन कनिमोझी जो राजनेत्री है और एनजीओ चलाती है, लिप्त थे। इसमें पूँजीपतियों की दलाली करने वाली नीरा राडिया, मीडियाकर्मी, प्रभु चावला, पदमश्री बरखा दत्त, वीर सिंघवी के नाम भी सामने आये। जाहिर सी बात है कि 1.72 लाख करोड़ में जिसकी जैसी भूमिका रही होगी उसको वैसा हिस्सा मिला होगा।

1990 के बाद देश में जो आर्थिक उदारीकरण शुरू हुआ उसके कारण भले ही समाज के निचले वर्ग की स्थिति और दयनीय हुई हो, परन्तु समाज के एक छोटे से वर्ग को इससे काफी फायदा हुआ है। ध्यान से देखें तो स्पष्ट हो जाएगा कि 1990 के बाद विदेशों में धन भेजने में ही बढ़ोत्तरी नहीं हुई, देश के भीतर भी काले धन में बेतहाशा वृद्धि हुई है। पिछले 10-15 साल में नेताओं ने इस देश को इतना लूटा है जितना आजादी के बाद आधी सदी में नहीं लूटा गया। देश में आजादी के बाद से ही घोटाले हो रहे हैं, पर अब जो घोटाले सामने आ रहे हैं उसकी वजह यही है कि 90 के बाद पूँजीपतियों ने जहाँ एक तरफ पूँजी का निवेश बढ़ाया है, वहीं दूसरी तरफ अपने फायदे के लिए नेता व नौकरशाहों को भी खूब दलाली दी है। नेताओं की लूट के दो उदाहरण देना ही काफी होगा।

झारखंड के पूर्व मुख्यमंत्री मधु कोड़ा को 30 नवम्बर 2009 में गिरफ्तार किया गया।

वे दो साल से भी कम समय के लिए मुख्यमंत्री रहे और इतने कम समय में उन पर 1,340 करोड़ की अवैध सम्पत्ति इकट्ठी करने का आरोप था। दूसरा नाम जगन मोहन रेड्डी का है। जगनमोहन आंध्र प्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री वाई एस रेड्डी का बेटा है। जगन पर सीबीआई का आरोप था कि उसकी कम्पनियों में 1,234 करोड़ का निवेश है।

2004 के चुनाव में वाई एस आर रेड्डी ने परिवार की कुल सम्पत्ति 50 लाख रुपये घोषित की थी, उसमें से जगन के नाम 9.18 लाख रुपये की सम्पत्ति थी। 2008-09 के वित्तीय वर्ष में जगन ने जो आयकर रिटर्न जमा किया उसमें 2.92 लाख रुपये कर दिया है। अप्रैल 2009 के चुनाव में जगन ने 7,740 करोड़ रुपये की सम्पत्ति घोषित की जिसमें 21 करोड़ पैतृक सम्पत्ति, खेतिहर और गैर खेतिहर भूमि भी शामिल हैं। मई 2011 के उप चुनाव में जगन ने चुनाव आयोग के सामने अपनी पत्नी की सम्पत्ति की घोषणा की, जो 365 करोड़ रुपये थी।

2004 में 9.18 लाख की सम्पत्ति रखने वाले जगन ने 2011 तक 400 करोड़ से अधिक की सम्पत्ति बना ली, जबकि उसकी वास्तविक सम्पत्ति 1,200 करोड़ से भी अधिक है। बताया जाता है कि यह सम्पत्ति उसके पिता के चार साल के मुख्यमंत्रित्व काल में कम्पनियों से इकट्ठा की गयी है जिसके बदले में अपने मुख्यमंत्री पिता से वह कम्पनियों के काम कराता था। कहा तो ये भी जाता है कि जगन ने जो सम्पत्ति घोषित की है वह बहुत मामूली है। उसके खिलाफ चुनाव लड़ने वाले डीएल रविन्द्र रेड्डी का कहना है कि बैंगलोर में 31 एकड़ में उसका जो बंगला है उसी की कीमत 400 करोड़ है।

यह मधु कोड़ा या जगन का सच नहीं है, यह सच है सत्ता में भागीदारी करने वाले हर मंत्री का। ऐसा सम्भव है कि सत्ता में शामिल हर नेता इतनी बड़ी लूटपाट में शामिल न हो, पर ऐसा तो लगभग असम्भव है कि वह लूट में शामिल ही न हो।

कॉरपोरेट ने सिर्फ नेताओं से ही साँठ-गाँठ नहीं की है, उसने अपने गैर कानूनी कार्यों में सहायता करने वाली सरकारी मशीनरी पर भी खूब चढ़ावा चढ़ाया है। एक उदाहरण देखिये-

अप्रैल 2010 में मेडिकल काउंसिल ऑफ इंडिया के चेयरमैन केतन देसाई को गिरफ्तार किया गया। उस पर ज्ञान सागर मेडिकल कॉलेज पटियाला के उपाध्यक्ष से दो करोड़ की रिश्वत लेने का आरोप था। 1990 के बाद देश में तेजी से निजी मेडिकल कॉलेज खुले हैं। 1995 तक उत्तर प्रदेश में एक भी निजी मेडिकल कॉलेज नहीं था। 1995 से अब तक उत्तर प्रदेश में 14 निजी मेडिकल कॉलेज खुल गये हैं। मेडिकल काउंसिल ऑफ इंडिया निजी मेडिकल कॉलेजों को मान्यता देता है। मान्यता प्राप्त करने के लिए ये निजी मेडिकल कॉलेज एमसीआई को करोड़ों का चढ़ावा चढ़ाते हैं। उसका कारण यह है कि हर कॉलेज एमसीआई निरीक्षण के समय फर्जीवाड़ा करता है। 90 प्रतिशत स्टाफ एक दिन के लिए किराये पर रखा जाता है। एमसीआई के मानकों के अनुसार मेडिकल कॉलेज की

मान्यता पाने के लिए 300 बिस्तरों का अस्पताल चालू हालत में होना चाहिए जो अधिकांश मामलों में नहीं होता। ज्यादातर कॉलेज कोई मानक पूरा नहीं करते और यदि एमसीआई ने मान्यता लटका दी तो उनका बहुत बड़ा नुकसान हो जाएगा। इसलिए जैसे भी हो उसे मान्यता लेनी ही होती है। एक निजी मेडिकल कॉलेज एक छात्र को एमबीबीएस की डिग्री देने के बदले 50 से 60 लाख वसूलता है। अगर एक कक्षा में सौ सीट हैं तो यह रकम 50-60 करोड़ होती है। परा स्नातक के विद्यार्थी से तो एक से सवा करोड़ वसूला जाता है।

मुझे याद है 2009 के अन्त में या 2010 के शुरूआत में करीब सौ डीम्ड विश्वविद्यालय की मान्यता रद्द करने का मामला चल रहा था, तब एक परिचर्चा में प्रो. यशपाल ने यही बात इंजीनियरिंग कॉलेज के बारे में कही थी। उन्होंने उदाहरण दिया था कि एक कमरे में एमबीए कॉलेज चल रहा था। निरीक्षण के दौरान इंजीनियरिंग कॉलेजों में एक दिन के लिए किराए पर कम्प्यूटर लाने की बात उन्होंने कही थी। ये सब बातें निरीक्षकों को मालूम होती हैं पर लेन-देन से हर काम हो जाता है।

एमसीआई के चेयरमेन केतन देसाई के यहाँ से 1,800 करोड़ रुपये और 1.5 टन सोना बरामद हुआ। यह स्थिति सिर्फ केतन देसाई की नहीं है। जो भी नौकरशाह किसी सरकारी ऑफिस को चलाता है और उसे ऐसे अधिकार प्राप्त हैं जिनके बदले नाजायज कार्यों को जायज बना कर वह पैसे हासिल कर सकता है उसकी कहानी ऐसी ही है।

स्विस बैंकों में भारत का 1,456 अरब डॉलर जमा है। यह बहुत बड़ी रकम है और हमारे सकल घरेलू उत्पाद के बराबर है। जहाँ तक काले धन का मामला है तो वह भारत में भी कम नहीं है। राजनीति और नौकरशाही के कुछ उदाहरण ऊपर दिये गये हैं। नौकरशाह और राजनीति के अलावा व्यापारी वर्ग के पास भी काले धन की कमी नहीं है। ऊपर मैंने कहा है कि प्राइवेट मेडिकल कॉलेज एमबीबीएस की डिग्री 50 लगभग लाख रुपये में देती है। मेडिकल कॉलेज, इंजीनियरिंग कॉलेज, मेनेजमेंट कॉलेज या महँगें स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चे सिर्फ राजनेता या नौकरशाहों के ही नहीं होते हैं। ये बच्चे तमाम छोटे-बड़े बिजनेस करने वाले, बड़ी कम्पनियों में ऊँचा वेतन पाने वालों के बच्चे होते हैं और यह धन ईमानदारी की कमाई से खर्च नहीं किया जाता है। एक प्राईवेट मेडिकल कॉलेज साढ़े छः लाख प्रतिवर्ष की अध्ययन शुल्क की ही रसीद देता है। पंद्रह-बीस लाख की घूस तो काले धन के रूप में ही लिया जाता है और काले धन वाले खाते में ही जाता है। इस तरह विलासिता का जीवन जी रहा जो 15-20 प्रतिशत ऊपर का तबका है वह किसी न किसी रूप में काले धन का संचय किए हुए है।

हम जानते हैं कि वर्तमान व्यवस्था में ताकतवर लोग नियम कानून को अपने पक्ष में उपयोग करते रहते हैं और ऐसे कानून बनवाते रहते हैं जो उनके हितों की रक्षा करते हैं। इसी तरह बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में एनजीओ नाम की जो संस्था अस्तित्व में आयी

उसने कानून व्यवस्था में कई ऐसे छिद्र पैदा कर दिये जिन से छनकर ढेर सारा काला धन इकट्ठा किया जा सके। इसलिए अधिकांश नेता नौकरशाह व प्रभाव ाली लोगों ने सीधे या अपने निकट सम्बंधियों के माध्यम से एनजीओ बना लिये। अपवाद स्वरूप कुछ एनजीओ को छोड़ दिया जाए तो अधिकांश एनजीओ फंडिंग का बड़ा हिस्सा काले धन में बदलने की दुकानें ही साबित हुई हैं।

अभी महाराष्ट्र में गड़करी के मामले का खुलासा हुआ। नागपुर के पास सरकार ने एक बांध परियोजना के लिए किसानों की जमीन अधिग्रहित की। इसमें से 100 एकड़ जमीन बच गयी। किसानों ने अपनी बची हुई जमीन वापस लेने के लिए आवेदन किया तो सर्वोच्च न्यायालय ने उसे खारिज कर दिया। इस नियम के अनुसार अधिग्रहीत जमीन किसानों को वापस नहीं की जा सकती, उसे या तो सार्वजनिक कार्य के लिए उपयोग किया जाता है या फिर उसकी नीलामी की जा सकती है। सर्वोच्च न्यायालय के आदेशानुसार यह जमीन किसानों को वापस नहीं की जा सकती थी और न नितिन गड़करी को दी जा सकती थी। परन्तु नितिन गड़करी एक एनजीओ भी चलाते हैं। आज के समय में एनजीओ से अच्छी सेवा भला कौन कर सकता है। सर्वोच्च न्यायालय के नियम और एनजीओ का भला इससे अच्छा उपयोग और क्या हो सकता है।

इसी तरह बाबा रामदेव जो काले धन की लड़ाई लड़ रहे हैं, उन्होंने तमाम एनजीओ और ट्रस्ट बना रखे हैं। इन ट्रस्टों में बाबा ने पचासों अरब रुपये इकट्ठे कर रखे हैं। जब तक बाबा की राजनीतिक आकांक्षाएँ नहीं जागी थीं तब तक सरकारें उन्हें प्रोत्साहित कर रही थीं। अब सरकार के प्रवर्तन निदेशालय को यह सपना आया है कि बाबा के ट्रस्टों को इसलिए छूट दी गयी थी कि वे गैर-लाभकारी हैं, परन्तु वे तो व्यवसाय की तरह लाभ कमा रहे हैं। इस समय बाबा रामदेव पर सौ से अधिक केस चल रहे हैं।

फिल्म उद्योग में सबसे अधिक काला धन लगाया जाता है। वहाँ कितना काला धन बह रहा है, इसका हिसाब लगाना असम्भव है। मतलब देश-विदेश में जो काला धन है वह उससे कहीं बहुत अधिक है जिसकी बात की जाती है।

भ्रष्टाचार और कानून

पिछले दो वर्षों से भ्रष्टाचार का मुद्दा छाया हुआ है। पिछले तीन सालों में जहाँ बड़े-बड़े घोटाले निकल कर सामने आये हैं, वहीं रामदेव व अन्ना के आंदोलनों ने भ्रष्टाचार पर समाज में एक बहस खड़ी कर दी है। अन्ना के अनशन और जन लोकपाल कानून की काफी चर्चा हुआ। अन्ना और उनकी टीम ने बार-बार यह कहा है कि अगर जन लोकपाल आ गया तो भ्रष्टाचार समाप्त हो जाएगा। लोकपाल यानी भ्रष्टाचार रोकने के लिए एक और कानून, एक नयी संस्था का निर्माण।

देश में भ्रष्टाचार रोकने के लिए कानून की कमी नहीं है। पहले ही कई कानून बने हुए हैं, पर सच यह है कि भ्रष्टाचार इस व्यवस्था की अनिवार्य उपज है, व्यवस्था में आमूल-चूल परिवर्तन किये बिना कानून बना कर उसे समाप्त नहीं किया जा सकता। भ्रष्टाचार समाप्त करने के लिए समय-समय पर कई कानून बनते रहे हैं। भ्रष्टाचार विरोधी कानून। एजेंसियों के माध्यम से भ्रष्टाचार के कुछ मामले उठते रहते हैं, परन्तु भ्रष्टाचार बिलकुल कम नहीं हो रहा, वह निरन्तर बढ़ता ही जा रहा है। भ्रष्टाचार विरोधी कुछ जाँच एजेंसियाँ इस प्रकार हैं -

1. मुख्य सतर्कता आयोग (सीवीसी)
2. एंटी करप्शन ब्यूरो
3. केन्द्रीय जाँच ब्यूरो (सीबीआई)
4. महालेखा परीक्षक व नियंत्रक (कैग)
5. लोकायुक्त

पिछले कुछ सालों में ऑडिटर जनरल (कैग) ने कई बड़े घोटाले खोले हैं। हर सरकारी विभाग में प्रतिवर्ष ऑडिट होता है। आज के समय में किसी सरकारी विभाग में भ्रष्टाचार व गड़बड़ी न होना एक असम्भव बात है। बावजूद इसके, ऐसा कम ही सुनने को मिलता है कि किसी ऑडिट टीम ने किसी सरकारी दफ्तर में कोई गड़बड़ी पायी हो। दरअसल आज के समय में ऑडिट टीम द्वारा पैसे वसूलना एक अलिखित नियम सा बन गया है। इससे यह भी पता चलता है कि एक कानून जो भ्रष्टाचार रोकने के लिए बना है, एक स्तर पर यानी कैग के स्तर पर थोड़ा-बहुत प्रसांगिक है कि उससे कुछ घोटालों का खुलासा हो रहा है वहीं निचले स्तर पर वह कानून खुद बेहद भ्रष्ट है।

आज अन्ना हजारे और अरविंद केजरीवाल लोकपाल कानून की बात कर रहे हैं। वे कह रहे हैं कि लोकपाल बन जाने से भ्रष्टाचार खत्म हो जाएगा। अक्टूबर 2005 में शासन प्रणाली को पारदर्शी बनाने के लिए और भ्रष्टाचार रोकने के लिए सूचना का अधिकार कानून आया। अगर हम इस कानून के बारे में पढ़ेंगे तो लगेगा कि अब इस

देश में किसी तरह का भ्रष्टाचार हो ही नहीं सकता। सब कुछ पारदर्शी हो गया है। आप किसी भी विभाग से कोई भी सवाल पूछ सकते हैं। 2005 में कानून बना और 2007 में अरविंद केजरीवाल की एक पुस्तक आयी-सूचना का अधिकार। इस पुस्तक के पृष्ठ 23 पर लिखा है -

''नागरिकों के पास यह ताकत जनप्रतिनिधियों से भी ज्यादा है। कोई विधायक-सांसद सवाल पूछना चाहे तो कोई जरूरी नहीं वह स्वीकृत हो जाये। हुआ भी तो जरूरी नहीं कि सदन में उस पर चर्चा हो और हुई भी तो जरूरी नहीं कि जबाब मिले। एक बार मामला खत्म, तो फिर अगले सत्र का इंतजार। एक दिन में कोई विधायक-सांसद कितने सवाल पूछ सकेगा, इसकी भी सीमा है। लेकिन सूचना अधिकार ने नागरिकों को ऐसी तमाम सीमाओं से मुक्ति दिलायी है। कई मामलों में इसने नागरिकों को सांसद-विधायक से भी ज्यादा शक्तियाँ दी हैं।''

केजरीवाल ने यह किताब सूचना का अधिकार कानून बनने के ठीक बाद लिखी थी। इस पुस्तक को पढ़ने पर उस समय पाठकों को यही लगा होगा कि बस अब भ्रष्टाचार समाप्त होने में ज्यादा समय नहीं लगेगा। भला इतनी पारदर्शिता होने के बाद भ्रष्टाचार कैसे समाप्त नहीं होगा। लेकिन आज हम अब अच्छी तरह जानते हैं कि सूचना का अधिकार कानून की उपयोगिता और चाहे जो हो, परन्तु भ्रष्टाचार रोकने में यह बिलकुल सक्षम नहीं है। अगर भ्रष्टाचार रोकने में इस कानून की कोई भूमिका होती तो पिछले सात सालों में वह जरूर दिखाई देती। लेकिन ऐसा नहीं हुआ है। बीस साल पहले जो आर्थिक नीतियाँ देश में लागू हुईं, उससे तमाम क्षेत्रों में अत्याधिक बदलाव आया। कम्पनियों ने अपने हित साधने के लिए दलाली (जिसे वे लॉबिंग भी कहती हैं) को बढ़ावा दिया। सरकारी दफ्तरों में रिश्वतखोरी भी इन सालों में पहले की अपेक्षा बढ़ी।

बहुत से लोग यही कहेंगे कि जनता में चेतना नहीं है और वह उसका उपयोग नहीं कर रही है। लेकिन ऐसा नहीं है। जिस तरह हर कानूनी प्रक्रिया एक जंजाल बन के रह जाती है और अन्ततः उस कानून से भी कुछ हासिल नहीं होता। यह बात सूचना का अधिकार कानून पर भी लागू होती है। जनता सूचना के लिए आवेदन दे। डेढ़-दो महीने बाद अधिकारी कुछ गोल-मोल से जवाब दे दे या दे ही नहीं। फिर यहाँ-वहाँ अपील करती फिरे और उसके बाद भी कोई संतोषजनक उत्तर न मिले और जवाब न देने वालों को दंडित भी न किया जाय और आधी-अधूरी गलत सूचनाएँ प्राप्त करना भी एक कानूनी लड़ाई जैसा बन जाये, ऐसी स्थिति में भी यह उम्मीद लगाना कि सूचना का अधिकार कानून से भ्रष्टाचार समाप्त हो जाएगा और शासन व्यवस्था एकदम पारदर्शी बन जाएगी, बेवकूफी के अलावा और कुछ नहीं है।

सूचना का अधिकार कानून का सबसे अच्छा उपयोग पत्रकारों व एनजीओ वालों ने किया है। पत्रकार खबरें बनाने के लिए व ब्लैकमेलिंग करने के लिए इस कानून का

उपयोग करते हैं, तो एनजीओ वालों के अपने हित साधते हैं और मुफ्त में समाजसेवी व सूचना अधिकार कार्यकर्ता का खिताब भी उन्हें मिल जाता है। सूचना के अधिकार से भ्रष्टाचार समाप्त हो जाएगा या वह कम हो जाएगा, ऐसा सोचना तो मूर्खतापूर्ण है, परन्तु इतना जरूर है कि कुछ लोग व्यक्तिगत स्तर पर कुछ छोटे-मोटे काम इस कानून के द्वारा करा लेते हैं। कई बार जनता के लिए लाभप्रद होते हैं। में कुछ महत्त्वपूर्ण आँकड़े भी सामने आ जाते हैं।

पिछले साल से अरविंद केजरीवाल के समर्थक इस बात का प्रचार कर रहे हैं कि अगर लोकपाल बिल पास हो गया तो सारे भ्रष्ट नेता जेल में नजर आएँगे। अगर ऐसा नहीं है तो कोई भी सरकार लोकपाल बिल क्यों नहीं पास होने देती। क्यों इतने साल से अब तक लोकपाल बिल अटका हुआ है। दरअसल ऐसा हर नये कानून के साथ होता है। सूचना का अधिकार कानून से इस भ्रष्ट व्यवस्था में भले ही कोई परिवर्तन न आया हो, जनता को सवाल पूछने का अधिकार तो देता ही है। लेकिन सूचना का अधिकार कानून के लिए लड़ने वालों को काफी समय तक इन्तजार करना पड़ा था, तब जाकर 2005 में सूचना का अधिकार कानून अस्तित्व में आया। इसका मतलब यह नहीं कि शासक वर्ग डरा हुआ था कि इस कानून के आ जाने से उसकी भ्रष्ट व्यवस्था में कोई बहुत बड़ा परिवर्तन आ जाएगा। इसका कारण यह है कि शासक वर्ग ऐसा कोई भी कानून आसानी से पास नहीं करता है जिससे जरा सा भी जनहित जुड़ा होता है। इसका एक फायदा यह भी होता है कि शासक वर्ग जनता की काफी ऊर्जा संघर्ष में खर्च करा लेता है। दूसरा, उसकी माँग करने वाली संस्थाएँ कुछ समय के लिए जनता को तसलली देने में कामयाब रहती हैं कि इतने संघर्षों के बाद उसने यह कानून हासिल किया है तो कोई न कोई तो बात होगी ही। जरूर इससे उसकी समस्याएँ हल हो जाएँगी।

लोकपाल के मामले में भी यही बात है जो केजरीवाल भी जानते हैं। वे अपनी सत्ता की भूख के लिए कभी कहते हैं कि लोकपाल से 60 प्रतिशत भ्रष्टाचार खत्म हो जाएगा। स्वीडन में ऐसा हो गया, सिंगापुर में वैसा हो गया, हमारे देश में ऐसा हो जाएगा। कभी कहते हैं कि सिर्फ लोकपाल से भ्रष्टाचार खत्म नहीं होगा उसके बाद निर्वाचित जन प्रतिनिधियों को वापस बुलाने का अधिकार (राइट टु रिकॉल) हासिल करने के लिए लड़ेंगे।

दरअसल हमें यह बात समझनी चाहिए कि भ्रष्टाचार आजादी से पहले भी था और आजादी के बाद भी। जिस तरह की राज्य व्यवस्था का हमने निर्माण किया, उसमें भ्रष्टाचार की गुंजाइश थी और जब तक यह व्यवस्था रहेगी, भ्रष्टाचार की गुंजाइश बनी रहेगी। कानून किसी भी व्यवस्था का एक उपकरण मात्र होता है और वह उस व्यवस्था के अन्दर ही काम करता है। इसलिए यह बात अब स्थापित हो गयी है कि कानून के द्वारा भ्रष्टाचार समाप्त नहीं हो सकता।

भ्रष्टाचार के कारण

भ्रष्टाचार क्यों है इस मामले में इस भ्रष्ट व्यवस्था ने ही अपने कॉरपोरेट मीडिया के माध्यम से तरह-तरह के भ्रम फैला रखा हैं। भ्रष्टाचार की बात जब भी आती है मीडिया नेताओं या अधिकारियों की ओर जनता के सारे आक्रोश को मोड़ देता है। मीडिया ने यह बात भी बहुत तेजी से फैलायी है कि भ्रष्टाचार के लिए इस देश की जनता ही जिम्मेदार है। वही अच्छे नेताओं की जगह भ्रष्ट नेताओं को चुनकर संसद-विधानसभा में भेजती है। जब अन्ना भ्रष्टाचार के विरुद्ध अनशन कर रहे थे और भ्रष्टाचार का मुद्दा जनता में चर्चा का विषय था। उस समय मीडिया निरंतर यह बहस चला रहा था कि जनता ही व्यवस्था को भ्रष्ट करती है। वह अपना काम कराने के लिए खुद ही सरकारी दफ्तरों में रिश्वत देती है। ऐसी ही तरह-तरह की भ्रामक धारणाएँ जनता में फैलायी गयी हैं।

यह धारणा भी है कि जनता अशिक्षित है, जागरूक नहीं है। अगर जनता जागरूक हो जाये तो भ्रष्टाचार होगा ही नहीं।

यह बात भी लगातार फैलायी जा रही है कि भ्रष्टाचार की मुख्य वजह लोगों का नैतिक पतन है। उनमें राष्ट्रीय भावना का अभाव है और वे अपने स्वार्थ के लिए जीने लगे हैं। बेईमानी की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। लोगों के चरित्र में निरन्तर गिरावट आ रही है। कानून की जटिलता को भी भ्रष्टाचार का कारण बताया जाता है। लोगों का कहना है कि कानून इतना जटिल है कि भ्रष्टाचारी उसका फायदा उठाकर छूट जाते हैं। उनको दण्ड नहीं मिलता। इससे भ्रष्टाचारियों के मन से यह भय निकल गया है कि भ्रष्टाचार करने पर कोई सजा होगी, इसलिए वे बिना भय के भ्रष्टाचार करते हैं।

कुछ लोग ऐसा भी मानते हैं कि राजनीति भ्रष्टाचार की जड़ है। पार्टियाँ चुनावों के लिए पूँजीपतियों से पैसा लेती हैं। इससे राजनीति में भ्रष्टाचार पनपता है। राजनेता के भ्रष्ट होने से प्रशासन भ्रष्ट होता है। अगर पार्टियाँ फंड लेना बंद कर दें, चंदा लेना बंद कर दें, नेता ईमानदार हो जायें तो पूरा तंत्र ईमानदार हो जायेगा।

कुछ लोग ऐसे तर्क भी देते हैं कि सरकारी नौकरों के वेतन इतने कम हैं कि अगर वे सिर्फ वेतन पर ही गुजारा करें तो भूखों मर जाएँ।

इस तरह भ्रष्टाचार के जो तमाम कारण बताये जाते हैं वे सतही बातें हैं। अगर कार्यालयों में आसानी से काम हो जाये तो काम कराने के लिए कौन पैसे देगा? अगर वेतन कम होना ही भ्रष्टाचार की वजह होती तो जिनका वेतन अधिक है वे भ्रष्टाचार नहीं करते। जबकि उनके पास ही अधिक शक्तियाँ होती हैं और वे अपनी शक्ति का दुरूपयोग करते हुए अधिक भ्रष्ट होते हैं। चरित्र भी कोई ऐसी चीज नहीं है जो स्थिर बनी रहे।

सामाजिक मूल्य व्यवस्था से संचालित होते हैं। व्यवस्था में पतन होता है तो सामाजिक मूल्यों में भी पतन होता है। इससे व्यक्तिगत नैतिकता में भी कमी आती है।

आजादी के बाद नेहरू ने देश में जिस तरह की आर्थिक नीतियाँ लागू की उनमें निजी क्षेत्रों के लिए थोड़ी रोक लगायी गयी और सार्वजनिक क्षेत्र का थोड़ा विकास किया गया। पूँजीपतियों के पैरोंकारों ने इसे लाइसेंस राज या परमिट राज कहा। यानी निजी क्षेत्र को उत्पादन शुरू करने के लिए सरकारी ऐजेंसियों की स्वीकृति लेने की प्रक्रिया से गुजरना पड़ता था। यह बात जोर-शोर से उठायी गयी कि भ्रष्टाचार की मुख्य वजह परमिट राज या लाइसेंस राज है। निजी पूँजी लगाने के लिए लाइसेंस राज की लम्बी प्रक्रिया में सरकारी एजेंसियों को भ्रष्टाचार के रूप में काफी पैसा देना पड़ता है। 1990 में आर्थिक उदारीकरण के तहत देश में नई आर्थिक नीतियाँ लागू हुईं। हमारी अर्थव्यवस्था को निजी पूँजी के लिए खोल दिया गया। लाइसेंस राज तो खत्म हो गया, पर 1990 के बाद अर्थव्यवस्था पर निजी पूँजी के कब्जा जमाने की होड़ में अंधाधुंध लूट शुरू हो गयी। राजनीति और पूँजीपतियों के बीच समझौते की गाँठ मजबूत हुई। राजनेता, पूँजीपतियों के प्रशासनिक अधिकारी उनके क्लर्क और चपरासियों की तरह काम करने लगे।

मनुष्य के जीवन में रोटी, कपड़ा और मकान के बाद तीन चीजों का विशेष महत्त्व है। पहला स्वास्थ्य, दूसरा शिक्षा और तीसरा अपना व बच्चों का भविष्य। स्वास्थ्य एवं शिक्षा दोनों पर निजी क्षेत्र का पूरी तरह कब्जा हो चुका है। सरकारी स्कूल व सरकारी अस्पताल पर किसी को भरोसा नहीं रह गया है। बच्चों के भविष्य के लिए हर व्यक्ति अपने बच्चों को निजी विद्यालयों में पढ़ाना चाहता है, उन्हें निजी ट्यूशन, कोचिंग दिलवाना चाहता है। 70 प्रतिशत निम्न वर्ग के लोगों की मुख्य समस्या है- किसी तरह दो वक्त का खाना जुटाना और अपना व परिवार का किसी तरह तन ढकना। इससे ऊपर मध्यम वर्ग है, जिसकी आकांक्षा है कि किसी तरह पैसा इकट्ठा कर उच्च वर्ग की सुख-सुविधाएँ हैसियत हासिल करना। उच्च वर्ग की आकांक्षा है पूँजीपति वर्ग की लूट में अपनी साझेदारी हासिल करना। पूँजीपति वर्ग की आकांक्षा है- समाज का अधिक से अधिक शोषण कर, व्यवस्था के सारे नियम कानूनों को पैसे से खरीद कर अपने उद्योगों को दुनिया में फैलाना। अगर दुनिया नर्क बनती है तो बनती रहे।

दरअसल हमारी वर्तमान व्यवस्था इसी तरह के मूल्य स्थापित करती है। हमारी व्यवस्था इस तरह की सोच की गुंजाइश ही नहीं रखती कि हम मनुष्य हैं, मनुष्य के लिये एक बेहतर समाज का निर्माण करें, अच्छे सामाजिक मूल्यों की स्थापना करें।

हमारी वर्तमान व्यवस्था लोगों में सामाजिकता की भावना नहीं भरती। वह व्यक्ति को अपने व्यक्तिगत लाभ के लक्ष्य की ओर अग्रसर करती है। व्यक्तिगत लाभ से अर्थ है सिर्फ अपने लिए सुख-सुविधाएँ जुटाना और धन-दौलत इकट्ठी करना। इस व्यक्तिगत लाभ के लिए जो रास्ते खुलते हैं, वे समाज को भ्रष्टाचार की ओर ले जाते हैं।

नेशनल काउंसिल ऑफ एप्लाइड इकॉनोमिक रिसर्च के अनुसार 36 प्रतिशत लोग मुश्किल से किसी तरह अपने परिवार का पेट पाल रहे हैं और किसी तरह का भ्रष्टाचार करने की स्थिति में नहीं हैं। देश में लगभग 15 प्रतिशत मध्यवर्ग, 7.5 प्रतिशत उच्च मध्य वर्ग और 7.5 प्रतिशत उच्च वर्ग है। भ्रष्टाचार का सम्बन्ध इन्हीं तीस प्रतिशत लोगों से है। दरअसल सबसे ज्यादा भ्रष्ट हमारा बड़ा पूँजीपति वर्ग है। इस वर्ग के 100 लोगों के हाथ में देश की 25 प्रतिशत सम्पत्ति है। मतलब यह है कि अधिकांश भ्रष्टाचार कुछ हजार लोगों के हिस्से में जाता है। देश की 70 प्रतिशत जनता के पास नहीं के बराबर सम्पत्ति है।

हमारी व्यवस्था ऐसी है कि वह पूँजीपतियों को केवल भ्रष्टाचार करने की नहीं बल्कि पूरी लूट करने की छूट देती है। व्यवस्था ने पूँजी को सबसे बड़े मूल्य के रूप में स्थापित किया है। जहाँ पूँजीपतियों का एक मात्र उद्देश्य अधिक से अधिक शोषण करके अधिक से अधिक मुनाफा कमाना है। इसके लिए पूँजीपति जो कुछ भी कर सकते हैं कर रहे हैं। वे मंत्रालयों में अपनी पसंद के मंत्री पहुँचा रहे हैं। वे मीडिया को खरीद रहे हैं। वे प्रशासन को खरीद रहे हैं। लॉबिंग के नाम पर हर क्षेत्र में अपने दलाल खड़े कर रहे हैं। ये बातें पिछले दो सबसे बड़े घोटाले 2जी स्पेक्ट्रम व कोयला घोटाले में बहुत स्पष्ट रूप से सामने आयी है।

पिछले कुछ समय से यह बात फैलायी जा रही है कि देश में बहुत भ्रष्टाचार है। जहाँ तक भ्रष्टाचार की बात है, तो यह सच है कि व्यवस्था में जितना हम सोचते हैं उससे कहीं अधिक भ्रष्टाचार है। लेकिन भ्रष्टाचार से लड़ने के नाम पर पूरा ध्यान राजनीति व सरकारी दफ्तरों पर टिका दिया गया है।

देश और देश की व्यवस्था का लक्ष्य क्या है, यह बात बहुत आसानी से समझी जा सकती है। 1990 के बाद अगर हम सरकारों के बयानों पर ध्यान दें तो देश के बारे में उनका एक ही बयान होता है, कि विकास दर में वृद्धि हो रही है या वृद्धि करनी है। यानी 70 प्रतिशत लोगों को भले ही दो वक्त की रोटी न मिले लेकिन सरकार का लक्ष्य विकास दर में तेजी से वृद्धि करना है। ऐसे में जब वे अधिक सुधारों के नाम पर पूँजीपतियों को लूट की खुली छूट देने के लिए कानूनी सुधार कर चुके हैं, उनकी धन-दौलत तो बढ़नी ही हैं। अभी शुरूआत है इसलिए हम यह समझ रहे हैं कि कॉरपोरेट राजनेताओं, मीडिया, प्रशासन को अपने दलालों के माध्यम से खरीद कर भ्रष्टाचार कर रहा है पर कल को अमेरिका और ब्रिटेन की तरह जब लॉबिंग करना कानूनी हो जाएगा तो हमें लगने लगेगा कि वह भ्रष्टाचार नहीं लॉबिंग कर रहा है। आज जो नेता भ्रष्ट लग रहे हैं कल को यही मीडिया हमसे कहेगा कि आप ऐसा कैसे कह सकते हैं, सब कुछ कानून के अनुसार ही तो हो रहा है और अगर कुछ गलत है तो उसकी जाँच करायी जायेगी। यह कॉरपोरेट, नेताओं व प्रशासन के भ्रष्ट होने का स्पष्ट सा कारण है।

कभी इन्दिरा गाँधी ने कहा था कि भ्रष्टाचार दुनिया के हर देश में है और संस्थागत है। यानी हमारी लोकतांत्रिक व्यवस्था का, हमारी जो लोकतंत्र नाम की संस्था है उसका चरित्र ऐसा है कि उसमें भ्रष्टाचार अवश्यम्भावी है। वैसे ही जैसे हमारी शादी नाम की संस्था है उसमें बच्चे होना बहुत ही स्वाभाविक है। इस तुलना में फर्क सिर्फ इतना है कि विवाह नाम की संस्था में बच्चे पैदा होने या न होने पर नियंत्रण पा लिया गया है जबकि हमारी लोकतंत्र नाम की जो संस्था है उसमें भ्रष्टाचार को कुछ स्तरों पर थोड़ा नियंत्रित तो किया जा सकता है पर खत्म करना सम्भव नहीं है।

दरअसल हमारी व्यवस्था की संचालक शक्ति अधिक से अधिक पूँजी कमाना ही है। जहाँ 70 प्रतिशत लोगों के पास न तो पूँजी कमाने के अवसर हैं और न ही भ्रष्टाचार करने के। वहीं हमारा कानून चंद पूँजीपतियों को बेतहाशा पूँजी इकट्ठी करने व मनमाने भ्रष्टाचार की छूट देता है। इसके साथ ही मध्य वर्ग से उच्च वर्ग तक जो 30 प्रतिशत आबादी है उसे भी जो जिस स्थिति में है उसके अनुसार भ्रष्टाचार करने की छूट देता है। अगर भ्रष्टाचार रोकने के लिए इस 30 प्रतिशत हिस्से की नकेल कस दी जाय तो उनमें अत्याधिक असंतोष बढ़ जाएगा और यदि उसके असंतोष ने नीचे की 70 प्रतिशत जनता के असंतोष को भी भड़का दिया तो वह इस पूरी व्यवस्था के लिए खतरा खड़ा कर देगी। इसलिए जनता के इस हिस्से में भ्रष्टाचार के अवसर कम या ज्यादा तो हो सकते हैं खत्म नहीं हो सकते।

व्यवस्था का अपना चरित्र है कि वह तमाम चीजें जैसे चल रही हैं वैसे ही चलते रहने देना चाहती है, जब तक कि जनता में उसे लेकर कोई बड़ा विद्रोह पैदा होने की सम्भावना न हो। और अगर ऐसा हो भी जाता है तो वह जनता की थोड़ी सी बात मान लेती है। जैसे जनता की लम्बी लड़ाई के बाद उसने सूचना का अधिकार कानून बना दिया। जबकि उसे मालूम है कि इससे कुछ समय के लिए लोगों का आक्रोश शांत हो जाएगा और व्यवस्था को चलाने की संचालक शक्ति यानी भ्रष्टाचार यथावत बना रहेगा।

नैतिक व सामाजिक मूल्य और भ्रष्टाचार

सामान्य लोगों से लेकर प्रबुद्ध लोगों तक यह बात फैलायी गयी है कि समाज में नैतिक मूल्यों का पतन हो रहा है, चरित्र में गिरावट आ रही है, लोग भ्रष्ट हो गये हैं, इसीलिए भ्रष्टाचार है। पिछले दिनों जब भ्रष्टाचार के विरुद्ध आंदोलन हुए तब मीडिया ने बाकायदा इस बात का जोर-शोर से प्रचार किया था कि भ्रष्टाचार के लिए समाज ही जिम्मेदार है। अगर लोग रिश्वत न दें तो भ्रष्टाचार होगा ही नहीं। दरअसल भ्रष्टाचार के लिए लोग नहीं हमारी मौजूदा व्यवस्था जिम्मेदार है।

जहाँ तक सामाजिक मूल्यों की बात है तो सामाजिक मूल्य या नैतिक मूल्य समाज से निरपेक्ष या सार्वभौमिक कोई ऐसी चीज नहीं है कि वे हमेशा एक जैसे बने रहें। व्यवस्था की जैसी बुनियाद होती है और उस बुनियाद पर उसका जैसा विकास होता है, उसी के अनुसार सामाजिक व नैतिक मूल्यों में बदलाव आता है। यह सोचना कि सिर्फ हरीशचंद की कहानी सुना देने से या फिल्में दिखा देने से लोग सत्यवादी बन जाएँगे, एकदम बचकानी बात है। हो सकता है कुछ भोले लोग कहेंगे कि बच्चों को शुरू से ही नैतिक संस्कार देने चाहिए। वे माँग कर रहे हैं कि पाठ्य क्रम में नैतिक शिक्षा को शामिल किया जाएँ। कुछ लोग यह भी कहेंगे कि धर्म का ह्रास हो रहा है, इसीलिए नैतिक मूल्यों में गिरावट आ रही है। हमें याद होगा कि 25-30 साल पहले नैतिक शिक्षा नाम का विषय पाठ्यक्रम में था, जिसमें 'माँ मैं सदा सत्य बोलूँगा' जैसी कविताएँ व नैतिक मूल्यों को स्थापित करने वाली कहानियाँ होती थीं। धर्म से आज के समाज में कभी नैतिक मूल्यों में वृद्धि नहीं हो सकती, उल्टे इससे ढोंग और पाखण्ड को बढ़ावा मिलता है।

समझने वाली बात है कि वे कौन सी चीजें हैं जो सामाजिक और नैतिक मूल्यों को संचालित करती हैं। आखिर क्यों हुआ कि आजादी के संघर्ष में देश भर के जो लोग अपना सब कुछ कुर्बान करने को तैयार थे आजादी के कुछ ही दशकों बाद उनके सामाजिक मूल्यों में इतनी ज्यादा गिरावट आ गयी है। ऐसे में सोचने की बात यह है कि आखिर वे कौन से कारण हैं जो सामाजिक मूल्यों को तोड़ते चले जा रहे हैं। लोग सरकारी सेवाओं में जाते हैं तो भ्रष्टाचार का प्रशिक्षण लेकर नहीं जाते हैं। जहाँ तक संस्कारों की बात है, उन्हें बचपन से कोई यह नहीं सिखाता है कि तुम बड़े होकर भ्रष्ट बनना। सरकारी व्यवस्था की बात छोड़ दीजिए, जो लोग अपना निजी व्यवसाय (छोटे-मोटे काम से लेकर कॉरपोरेट कम्पनियों तक) करने वाले हैं वे भी अपने काम में ईमानदारी कहाँ बरतते हैं। आज दूध और मीठे में कितनी खतरनाक चीजें मिलायी जाती हैं जो स्वास्थ्य के लिए भी बेहद खतरनाक होती हैं।

कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि तमाम लोग यही सोचते हैं कि कलयुग आ गया है। धर्म का क्षय हो रहा है। इसलिए नैतिक मूल्यों में गिरावट आयी है। दरअसल सच यह है कि कलयुग, धर्म या अध्यात्म से भ्रष्टाचार या नैतिक मूल्यों का कोई सम्बन्ध नहीं है। आज बाबाओं और धर्म गुरूओं के धार्मिक समारोहों में जिस तरह भीड़ उमड़ती है, उससे

यह नहीं लगता कि धर्म का क्षय हो रहा है। दरअसल धर्म, समाज पर बाहर से थोपी हुई चीज है। धर्म के पास एक भय होता है कि गलत काम करोगे तो ईश्वर तुम्हें दण्ड देगा। सिर्फ काल्पनिक दण्ड के भय से नैतिक मूल्यों की स्थापना नहीं की जा सकती। यह सब हम समाज में देख भी सकते हैं। जो लोग धर्म गुरूओं व बाबाओं के दरबारों में धार्मिकता का प्रदर्शन करते हैं, जो लोग प्रतिदिन मंदिर जाते हैं, जो लोग सुबह-शाम घंटा भर पूजा करते हैं, उनके अंदर भी वैसे ही पतित मूल्य होते हैं। जहाँ तक कि वे बाबा और धर्मगुरू जिनके पीछे बेशुमार भीड़ होती है, बेशुमार धन दौलत के साथ ऐश्वर्यपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं। इसलिए ऐसा सोचना कि कलयुग आ गया है इसलिए व्यक्ति के चरित्र का पतन हो रहा है, बिलकुल फिजूल की बात है।

व्यक्ति जीवन में किस तरह के मूल्यों को अपनायेगा यह बहुत सी बातों पर निर्भर करता है। जैसे उसका पारिवारिक परिवेश, वह समाज जिसमें वह रहा रहा है, शिक्षा आदि। सामाजिक मूल्य वर्ग के अनुसर भी तय होते हैं, जैसे- उच्चवर्ग के सामाजिक मूल्य निम्नवर्ग के सामाजिक मूल्यों से भिन्न होंगे।

शहर और ग्रामीण परिवेश के सामाजिक मूल्य भिन्न-भिन्न होते हैं। यह भिन्नता उस सामाजिक व्यवस्था में भिन्नता के कारण है जिसमें लोग जी रहे हैं। शहरों का जीवन एक-दूसरे से स्वतंत्र होता है। इसलिए लोग एक-दूसरे के सुख-दुःख से अधिक मतलब नहीं रखते। गाँव के लोगों का जीवन एक दूसरे से जुड़ा होता है। खेती-बाड़ी के काम एक-दूसरे के सहयोग से ही होते हैं। इसलिए शहर के लोगों की अपेक्षा गाँव के लोगों में एक-दूसरे के सुख-दुख में अधिक सहभागिता होती है। लेकिन पिछले 25-30 सालों में गाँवों में जो परिवर्तन आये हैं उससे वहाँ के सामाजिक मूल्यों में भी परिवर्तन आये हैं।

जहाँ तक भ्रष्टाचार का सवाल है, वह ईमानदारी जैसे सामाजिक मूल्य से जुड़ा हुआ है। समाज में ईमानदारी बहुत ही व्यवहारिक मूल्य के रूप में रही है। जैसे धार्मिकता व्यवहारिक रूप में रहती है। एक धार्मिक व्यक्ति सुबह-शाम पूजा पाठ भी करता है और ऐसे काम भी करता है जो धार्मिक दृष्टि से उचित नहीं है। समाज में सत्य और ईमानदारी का व्यवहारिक पक्ष एकदम अलग है। दरअसल समाज में सत्य और ईमानदारी एक सामाजिक मूल्य के रूप में उस तरह कभी नहीं रही जिस तरह सत्यवादी हरीशचंद की कथा के द्वारा स्थापित की जाती है। हरीशचंद की तो बात ही छोड़िए, महात्मा गाँधी की जो सत्य और ईमानदारी की अवधारणा थी, वह भी एक समाज में कभी स्थापित नहीं हो सकी। दरअसल कोई भी सदाचार नैतिक शिक्षा की कहानी के माध्यम से न तो समाज में स्थापित किया जा सकता है और न बनाए रखा जा सकता है। समाज में वही मूल्य स्थापित होते हैं जिनकी कुछ उपयोगिता होती हैं। जैसे ईमानदारी को ही लें। गाँवों में जरूरत पड़ने पर लोग एक-दूसरे से पैसे उधार लेते हैं। कई बार लोग भाईचारे में दूसरों को पैसे उधार दे देते हैं, कई बार दिए गए पैसों पर ब्याज लगाते हैं। मैंने देखा है, इन पैसों की कोई लिखा-पढ़ी नहीं होती, फिर भी लोग बेईमानी बहुत कम ही करते हैं, ईमानदारी से वापिस कर देते हैं। फसल का मौसम आने पर गाँव के कुछ लोग व्यापारी बन जाते हैं। वे किसानों से हरी मटर जैसी सब्जियाँ

खरीदकर दिल्ली या कानपुर की मण्डियों में बेचते हैं। कभी-कभी इसमें घाटा भी हो जाता है। किसानों के बीच के ही ये लोग अधिकांशतः इस घाटे को बर्दाश्त कर लेते हैं और किसानों का हिसाब कर देते हैं। लोग ऐसा किसी धर्म के भय से नहीं करते हैं कि वे बेईमानी कर लेंगे तो ईश्वर उन्हें नर्क में भेज देगा और न वे इसलिए करते हैं कि वे हरीशचंद्र को आदर्श मानते हैं या उनके मस्तिष्क पर महात्मा गाँधी की गलत काम न करने वाली कहानी ने बहुत असर डाला है। इसका सीधा सा मतलब है कि वे अपने सामाजिक दायरे में अपनी सामाजिक विश्वसनीयता को नहीं खोना चाहते हैं। कभी-कभी लोग बेईमानी कर लेते हैं और उन्हें उसका खामियाजा उठाना पड़ता है। ऐसे लोगों का कितना ही जरूरी काम क्यों न हो, भले ही उनका आदमी मर जाये पर लोग बिना कोई चीज गिरवी रखे ब्याज पर भी ऐसे लोगों को पैसे नहीं देते हैं। इसी सामाजिक विश्वसनीयता को कायम रखने के लिए लोग ईमानदार बने रहने की हर सम्भव कोशिश करते हैं।

दूसरी तरफ शहरी लोगों में इस तरह के सामाजिक अंतर्सम्बन्ध बहुत सीमित होते हैं। उनमें वैयक्तिक भावना अधिक होती है। निचले तबके में फिर भी लोग एक जगह काम करते हैं, उनके हित भी एक दूसरे से जुड़े होते हैं, इसलिए उनमें सामाजिकता का आग्रह रहता है परन्तु मध्य वर्ग व उच्च मध्य वर्ग में यह आग्रह भी कमजोर पड़ जाता है।

किसी व्यवस्था में किस तरह के सामाजिक मूल्य होंगे यह बाहर से या कोई आदर्श कहानी बनाकर नहीं थोपे जा सकते। व्यवस्था की जैसी संचालक शक्ति होती है, उसी के अनुसार वह अपने सामाजिक मूल्य तय करती है। हमारी वर्तमान व्यवस्था की संचालक शक्ति पूँजी और मुनाफाखोरी है है। राज्य व्यवस्था का कर्तव्य होना चाहिए, कि वह हर नागरिक को रोटी, कपड़ा, मकान, स्वास्थ्य, शिक्षा उपलब्ध कराये। उसके बच्चों का भविष्य सुनिश्चित करे। राज्य व्यवस्था ने कभी अपनी यह जिम्मेदारी नहीं निभायी। इसके बदले वह अपने नागरिकों से कहती है कि वह उन्हें मनमाने पैसे कमाने का या मन पसंद रोजगार अपनाने का, अपने रोजगार को समृद्ध करने का अवसर देती है। इसका मतलब यह होता है कि व्यक्ति खुद ही अपनी व अपने बच्चों की जिंदगी को जैसा चाहे वैसा बनाये रखे। स्वाभाविक सी बात है कि हर व्यक्ति अपनी व अपने बच्चों की जिंदगी को बेहतर बनाना चाहेगा। यह एक अलग बात है कि हमारी राज्य व्यवस्था सत्तर प्रतिशत लोगों के जीवन को बेहतर बनाना तो क्या सामान्य जीवन की मूलभूत आवश्यकताएँ पूरी करने की गुंजाइश तक नहीं छोड़ती। व्यवस्था जिन्हें अपनी व अपने परिवार की मूलभूत आवश्यकताएँ पूरी करने के अवसर देती है, उनके सामने वह एक लक्ष्य रख देती है कि अब वे और अधिक पैसा कमाकर और बेहतर सुरक्षित व ऐश्वर्यपूर्ण जीवन बितायें। जिनके पास इतना सब कुछ पहले से है, उनके पास भी यही लक्ष्य है कि वे और अधिक पैसा कमायें, अधिक विलासितापूर्वक रहें। जिनके पास अथाह पूँजी है उनके सामने भी यही लक्ष्य है कि वे अपनी अमीरी का लोहा देश दुनिया में मनवा दें।

इस तरह पूरी व्यवस्था की जो चालक शक्ति है वह पूँजी है। पूँजी आज का सबसे बड़ा मूल्य बन गया है। क्योंकि पूरे समाज की चालक शक्ति पूँजी है और वही सबसे बड़ा

मूल्य है, तब यह बात निरर्थक हो जाती है कि पैसा आपने कैसे कमाया है। यह बात एकदम स्पष्ट हो गयी है कि पैसे से सब कुछ खरीदा जा सकता है। जो व्यक्ति छोटे स्तर पर गलत कर रहा है वह निश्चित है कि अगर उसके पास पैसा है तो पुलिस, प्रशासन से लेकर न्याय तक सब को खरीद सकता है। पूँजीपति प्रयास करता है कि सरकार या राजनीतिक दल उसकी जेब में रहें। क्योंकि पैसा सबसे बड़ा मूल्य बन गया है और उचित तरीकों से व ईमानदारी से पैसा कमाने की सीमा है, इसलिए लोग पैसा कमाने के लिए हर सम्भव तरीक अपनाते हैं। ऐसे में ईमानदारी जैसा मूल्य जो पैसा कमाने में सबसे बड़ी बाधा है, समाज खड़ा नहीं रह सकता।

किसी भी समाज में ऐसा नहीं होता कि सारे लोग ईमानदार हों या सारे लोग भ्रष्ट हों। लेकिन जब हर क्षेत्र में भ्रष्टाचार का बोलबाला हो और उसका स्तर दिन प्रतिदिन बढ़ रहा हो और कोई भी कानून उसके विरूद्ध कार्य करने में सक्षम न हो पा रहा हो, तब गौर करने की बात होती है कि आखिर हमारी व्यवस्था में ऐसी क्या चीज है जो पूरी व्यवस्था को भ्रष्ट करती जा रही हैं। यहाँ तक कि किसी विभाग में कोई व्यक्ति ईमानदारी से काम करना भी चाहे तो कर नहीं सकता, जैसे- एक थाना प्रभारी अगर ईमानदारी से काम करना चाहे तो भी वह कर नहीं सकता।

जो लोग यह कहते हैं कि ईमानदार नेताओं को चुनना चाहिए, उन्हें यह समझना चाहिए कि सरकारी सेवाओं में आने वाले तमाम लोग ऐसे होते हैं, जो शुरू में ईमानदार रहने की कोशिश करते हैं, परन्तु कुछ समय बाद ही समाज की मुख्य धारा से जुड़ जाते हैं। यहाँ एक उदाहरण देना उचित होगा। स्वास्थ्य विभाग में एक अवैतनिक पद होता है- आशा जिसका मुख्य काम होता है, गर्भवती महिलाओं को सरकारी अस्पताल में लाकर उनका प्रसव कराना व टीकाकरण में एएनएम (एक्सिलरी नर्सिंग मिडवाइफ) की सहायता करना। आशा गाँव की ही कम पढ़ी-लिखी महिलाएँ होती हैं। इन्हें अस्पताल में एक प्रसव कराने के सात सौ रुपये मिलते हैं। जब ये चुनी गयीं थी, तब प्रसव करा कर वे बहुत कम कमा पाती थीं। अब उनकी भी अच्छी कमाई हो जाती है। महिलाओं को अल्ट्रासाउंड कराने जिस निजी जाँच केन्द्र में ले जाती हैं वहाँ से उन्हें कमीशन कट मिल जाता है। जो केस रेफर होते हैं उन्हें बड़े सरकारी अस्पतालों में न ले जाकर निजी नर्सिंग होम में ले जाती हैं और वहाँ से भी उन्हें कमीशन मिल जाता है। सोचिए गाँव की एक कम पढ़ी लिखी वही अनपढ़ महिला मौका मिलते ही अपने लिए अतिरिक्त कमाई का अच्छा मौका तलाश लेती है या अल्ट्रासाउंड सेंटर व प्रसव केन्द्र उसे कमाई के रास्ते दिखा देते हैं तो सोचिए, जो पढ़े-लिखे लोग सरकारी सेवाओं में आते हैं, वे क्या नहीं कर सकते।

इसलिए इस व्यवस्था में समाजिक या नैतिक मूल्यों और चरित्र निर्माण की बात करना एकदम निरर्थक है। जब तक व्यवस्था में आमूल परिवर्तन नहीं होगा, पैसे को सबसे बड़े सामाजिक मूल्य की हैसियत से गिराकर व्यक्ति की जरूरतों तक नहीं लाया जाएगा, देश के उत्पादन को मुनाफे से जोड़ने की जगह उसे व्यक्ति की जरूरत व समाज के विकास से नहीं जोड़ा जाएगा तब तक अच्छे सामाजिक मूल्यों की स्थापना कतई सम्भव नहीं है।

हाल ही में हुए कुछ भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन

2010 व 2012 में रामदेव और अन्ना हजारे के भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन काफी चर्चित रहे। देश में इतनी समस्याओं के बावजूद जनता में किसी तरह का आंदोलन खड़ा न हो पाना समाज में बदलाव चाहले वाले लोगों को निराश करता रहा है। ऐसे में अन्ना और रामदेव के अनशन में लोगों ने जो हिस्सेदारी की उससे एक उत्साह का माहौल बना था। कोई भी आन्दोलन किसी के चाहने भर से खड़ा नहीं हो जाता। किसी भी सामाजिक संघर्ष के लिए संघर्षशील जनता और उसके नेतृत्व दोनों का विशेष महत्त्व है। ऐसे में जब संघर्षशील जनता की चेतना विकसित होती हैं, तब नेतृत्व गलत हाथों में होने पर भी चेतनशील जनता द्वारा संघर्ष चला कर नेतृत्व में बदलाव की सम्भावना होती है। लेकिन अगर संघर्षशील जनता की चेतना विकसित न हो और वह पूरी तरह नेतृत्व की अंधभक्त हो, तो समूचे संघर्ष का भविष्य नेतृत्व ही तय करता है। ऐसे संघर्ष के किसी मुकाम तक पहुँचने की संभावना तब खत्म हो जाती है, जब नेतृत्व अपने हित साधन के लिए जनता को गुमराह करने की कोशिश कर रहा हो। अन्ना और रामदेव के भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलनों को इसी रोशनी में देखे जाने की जरूरत है।

रामदेव और उनका काला धन

एक दशक पहले साइकिल से चलने वाले बाबा रामदेव ने इतने कम समय में धन का अम्बार लगा दिया। जून 2011 में उन्होंने अपने चार ट्रस्टों की सम्पत्ति 117.7 हजार करोड़ घोषित की है।

जून 2012 में बाबा को आयकर विभाग ने 4.95 करोड़ टैक्स का नोटिस दिया। विभाग के अनुसार बाबा अपने योग शिविरों में व्यवसायिक तरीके से पैसा कमाते हैं और उसका टैक्स नहीं भरते हैं। बाबा के गैर आवासीय शिविर में 51 रुपये से 7000 रुपये तक फीस लगती है, आवासीय शिविर जिनमें वातानुकूलित कमरों की सुविधाएँ हैं, उसकी फीस 8000 रुपये से 12,000 रुपये तक है।

नवम्बर 2012 में बाबा को केन्द्रीय सीमाशुल्क निदेशालय ने 5.14 करोड़ के सेवाकर भरने का नोटिस दिया। आरोप था कि वे हरिद्वार में व्यवसायिक गतिविधियाँ चला रहे हैं। बेशक रामदेव ने अपने चार ट्रस्टों की सम्पत्ति 117.7 हजार करोड़ घोषित की है पर उनका वास्तविक साम्राज्य कितना विशाल है यह सिर्फ अनुमान की बात है। सत्य साई बाबा का क्षेत्र दूसरा था। उनके ट्रस्टों के पास अथाह सम्पत्ति थी, फिर भी उनकी सीधे राजनीति में आने की महत्त्वाकांक्षा नहीं जगी तो शायद इसलिए कि उन्हें आभास रहा होगा कि भगवान बनना राजनीति से ज्यादा ठीक रहेगा। उन्होंने राजनीतिक पहुँच बनाये रखी और अपने आप को भगवान के रूप में ही स्थापित किया।

रामदेव को व्यवसाय बढ़ाना है। उन्हें उनके अनुयायी एक योग शिक्षक के रूप में मानते हैं। योग शिविरों में भले ही अलग-अलग वर्ग के लोगों के लिए 51 रुपये से लेकर 12,000 रुपये तक फीस होती है, पर रामदेव का असली धंधा अचार, मुरब्बा, च्वयनप्रास सहित दवाओं के नाम पर बनाये नुस्खों के रूप में बेचे जा रहे करीब 300 उत्पादों की एक बड़ी कम्पनी का है। वे अगरबत्ती, साबुन, मंजन से लेकर एड्स और कैंसर का इलाज तक, सब कुछ बेचते हैं। एक बड़े व्यवसायी के लिए आज के समय में आवश्यक है कि वह राजनीतिक पहुँच रखे। इसलिए रामदेव के मन में राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा का उभरना बहुत स्वाभाविक है।

रामदेव ने राजीव दीक्षित के साथ मिलकर भारत स्वाभिमान मंच बनाया था, जिसके पाँच लक्ष्य थे -

1. 100 प्रतिशत मतदान
2. 100 प्रतिशत राष्ट्रीय विचार
3. 100 प्रतिशत विदेशी कम्पनियों का बहिकार और स्वदेशी अपनाना
4. 100 प्रतिशत राष्ट्रीय नागरिकों की एकरूपता
5. 100 प्रतिशत योग केन्द्रित राष्ट्र

सन 2014 के चुनाव को निगाह में रखते हुए रामदेव ने भारत स्वाभिमान आंदोलन के साथ अपनी राजनीतिक रणनीति शुरू की। जो लोग जनवरी 2010 के हरिद्वार कुम्भ में गए होंगे और उन्हेंने बाबा रामदेव के होर्डिंग्स देखे होंगे, वे जानते हैं कि अब तक बाबा राजनीतिक पारी की शुरूआत करने की तैयारी कर चुके थे। गाँव-गाँव जाएंगे, भ्रष्टाचार मिटाएँगे, जैसे- नारों से होर्डिंग्स रंगे हुए थे। लेकिन बाबा जल्दी ही समझ गये कि न तो भारत स्वाभिमान मंच के फासीवादी किस्म के इन पाँच लक्ष्यों के भरोसे 2014 के आम चुनाव में हस्तक्षेप किया जा सकता है और न भ्रष्टाचार जैसे अमूर्त मुद्दे को चुनाव तक खींचा जा सकता है। इसलिए जब काले धन के बारे में विकीलिक्स ने खुलासा किया और यह मुद्दा मीडिया में उठ खड़ा हुआ तो बाबा ने लपक लिया। उन्होंने राजनीतिक पार्टीबाजों की तरह यह बात जनता में फैलायी कि कालाधन वापिस आने पर सब को एक-एक लाख रुपये मिल जाएगा। काले धन के लिए उन्होंने बहुत ही आसान समाधान भी खोज लिया, पाँच सौ-हजार के नोट बंद कर दिये जायें और काले धन की समस्या खत्म।

रामदेव का दुर्भाग्य यह है कि जैसे बालकृष्ण उनकी फार्मेसी का गोरखधंधा चला रहे हैं, वैसे ही राजीव दीक्षित को भारत स्वाभिमान मंच का हत्था पकड़ा कर उन्हें राजनीति की रणनीति तय करनी थी, परन्तु नवम्बर 2010 में उनका देहांत हो गया। फिर रामदेव के लिए भारत स्वाभिमान आंदोलन एक नारा बन के रह गया। हालाँकि आगे की रणनीति बनाने की रामदेव ने कोशिश जरूर की, पर वे अपनी राजनीतिक जड़े जमाने में सफल नहीं हो पाये।

जब रामदेव ने यह तय ही कर लिया कि उन्हें राजनीति में कूदना ही है तो उन्होंने राजनीति के मूल तत्व को समझने की कोशिश की। 2011 के अंत तक वे संघ, भाजपा,

केजरीवाल आदि के साथ अपने राजनीतिक भविष्य के लिए रणनीति बनाते रहे। 27 फरवरी 2011 को जब रामदेव ने अपने नेटवर्क से करीब एक लाख की भीड़ रामलीला मैदान में जुटा ली तब केजरीवाल को यही लगा कि रामदेव उनकी गाड़ी पार लगा देंगे। पर अप्रैल 2011 के अन्ना के तीन दिन के अनशन के बाद जो माहौल बना, उसने रामदेव की रणनीति गड़बड़ा दी। अन्ना और रामदेव भ्रष्टाचार से लड़ने की बात कर रहे थे, परन्तु अप्रैल 2011 में ऐसा कुछ भी नहीं हुआ था, जिससे रामदेव की नींद उड़ जाय सिवाय इसके कि रामदेव की जगह अन्ना की लोकप्रियता बढ़ गयी, इसलिए रामदेव ने जून में अपना अलग शक्ति प्रदर्शन जरूरी समझा। सरकार ने बर्बरतापूर्वक उन्हें रामलीला मैदान से खदेड़ दिया और उसी के साथ उनकी राजनीतिक रणनीति पूरी तरह असफल हो गयी। अगस्त में अन्ना के दोबारा अनशन से देशभर में भ्रष्टाचार के खिलाफ माहौल बना, पर रामदेव कहीं नजर नहीं आये। अगस्त 2012 में उन्होंने दोबारा उठने की कोशिश जरूर की पर इस बार सरकार ने उन्हें बिलकुल गंभीरता से नहीं लिया। जब सरकार का कोई व्यक्ति उनसे बातचीत करने तक नहीं आया तो भाजपा के साथ बातचीत करते हुए उन्होंने अनशन समाप्त किया। रामदेव का अपना नेटवर्क है और वे कुछ भीड़ जुटा सकते हैं, पर राम मंदिर की बात दूसरी थी। भ्रष्टाचार और काले धन के मुद्दे पर रामदेव के लिए राजनीतिक जड़ें जमाना आसान नहीं होगा। भले ही उनके पास भीड़ जुटाने का अपना नेटवर्क है।

अन्ना हजारे का आन्दोलन

सूचना का अधिकार कानून के लिए मैग्सेसे पुरूस्कार पाने के बाद अरविंद केजरीवाल कुछ दिन इत्मीनान से अपने एनजीओ पर ध्यान दे रहे थे कि अब भ्रष्टाचार लगभग समाप्त हो जायेगा। अचानक उन्हें इलहाम हुआ है कि भ्रष्टाचार अभी समाप्त नहीं हुआ है सो उन्होंने उसे समाप्त करने के लिए एक और कानून बनवाने का बीड़ा उठा लिया है। इसलिए तमाम एनजीओ चलाने वाले अब देश से भ्रष्टाचार समाप्त करने के लिए लोकपाल बनवाने की लड़ाई लड़ रहे हैं।

भ्रष्टाचार विरोधी इस मुहिम में अप्रैल 2011 में तीन दिन के अनशन से अन्ना हजारे को जो मीडिया कवरेज व लोकप्रियता मिली उसका किसी को भी अनुमान नहीं रहा होगा। अगस्त 2011 में अन्ना जब दोबारा अनशन पर बैठे तब देश भर में भ्रष्टाचार के विरूद्ध एक माहौल बना। लम्बे समय से समाज में कोई जनांदोलन न खड़ा हो पाने से हताश लोगों को ऐसा लगने लगा कि शायद यह मुहिम अपना दायरा बढ़ाये और समाज में कोई परिवर्तन हो। उन्हें उम्मीद बँधी कि अभी भी लोग सड़कों पर उतर सकते हैं, जनांदोलन हो सकता है, समाज में बदलाव आ सकता है। भ्रष्टाचार के विरुद्ध शुरू हुई इस मुहिम का अंत एक राजनीतिक पार्टी के गठन के रूप में हुआ।

5 अप्रैल 2011 को अन्ना हजारे ने लोकपाल बिल के लिए अनशन किया। तीन दिन के इस अनशन में मिली मीडिया कवरेज व जनता के समर्थन ने अरविंद केजरीवाल के अंदर आत्मविश्वास पैदा किया और वे अपनी एनजीओ टीम के साथ अगस्त 2011

में घोषित अनशन की तैयारी के लिए जुट गये। देश में अब तक बड़े-बड़े आंदोलन हुए हैं, लेकिन केजरीवाल के भ्रष्टाचार विरोधी इस आंदोलन की सबसे अलग विशेषता यह थी कि इसे आर्गेनाइज्ड करने में इंटरनेट, सोशल मीडिया, मोबाइल व मीडिया का विशेष योगदान था। केजरीवाल ने पूरे आंदोलन को इवेंट मैनेजमेंट की तरह मैनेज किया। इंटरनेट, फेसबुक, टिवट्र पर भावुक किस्म का प्रचार किया गया। अन्ना और केजरीवाल के बारे में मिस्डकॉल वाले मोबाइल नम्बर पर मैसेज भेजे गये कि अस्सी साल के बीमार अन्ना, आपके बच्चों की खातिर अनशन पर बैठ रहे हैं। अरविंद केजरीवाल को भयंकर डाइबिटीज है। हांगकांग और स्वीडन के बारे में कहानियाँ बना-बना कर फेसबुक पर साझा की गयी। इस तरह अपने एनजीओ कर्मचारियों सोशल मीडिया व मीडिया की सहायता से सिविल सोसाइटी और एनजीओ संचालकों ने भ्रष्टाचार को समाज के अंदर एक मुद्दा बना दिया। लेकिन अगस्त 2011 में अन्ना हजारे के अनशन ने एक आंदोलन का रूप धारण कर लिया उसके दो अन्य कारण भी महत्त्वपूर्ण हैं। आये दिन हजारों-लाखों करोड़ के घोटालों का खुलना, हर माह डीजल-पेट्रोल के दाम बढ़ना, निरंतर महँगाई बढ़ते जाना कुछ ऐसे कारण हैं जिन्होंने मध्यम वर्ग की हालत खराब हो गयी थी। उसके लिए जिंदगी मुश्किल होती जा रही थी। नेताओं व नौकरशाहों ने लूट मचा रखी थी, इससे वह हताश था। ऐसे में केजरीवाल और उनकी एनजीओ टीम भ्रष्टाचार समाप्त करने का आश्वासन लेकर आयी तो वह सहज ही उनके साथ जुड़ गया।

इस आंदोलन को देशव्यापी बनाने में भाजपा का भी कम महत्त्व नहीं था। चुनाव में ज्यादा समय नहीं था और उसके पास कोई नया चुनावी मुद्दा भी नहीं था। सरकार में नित नये घोटाले खुलने के बावजूद वह भ्रष्टाचार को मुद्दा नहीं बना पा रही थी। अगर काँग्रेस के घोटाले सामने आ रहे थे तो जिन राज्यों में भाजपा की सरकार थी वहाँ भी कोई अच्छी स्थिति नहीं थी। काँग्रेस की बुरी स्थिति होने के बावजूद भाजपा उसका विकल्प नहीं बन पा रही थी। ऐसे समय में जब केजरीवाल और अन्ना ने लोकपाल व भ्रष्टाचार के नाम पर सरकार को घेरा, तो भाजपा को आशा की किरण दिखायी दी और उसने अन्ना की टोपी पहनाकर न सिर्फ अपने कार्यकर्ता देशभर में उतार दिये बल्कि अपने दूसरे संगठनों जैसे विद्यार्थी परिषद को भी सक्रिय कर दिया। इस तरह अगस्त 2011 में अन्ना की अनशन के साथ यह तथाकथिक भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन खड़ा हुआ।

किसी भी जनांदोलन में जनता की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण होती है। आंदोलन की सफलता के लिए यह जरूरी है कि वह चेतनशील हो और उसमें लक्ष्य हासिल करने तक संघर्ष करने की क्षमता हो। दरअसल जनता तभी निरन्तर संघर्ष कर सकती है जब उसमें पर्याप्त चेतना और संगठन हो या उसमें अत्यधिक असंतोष हो। जनांदोलन के नेतृत्व की यह जिम्मेदारी होती है कि वह जनता की चेतना बढ़ाने का निरंतर प्रयास करे। इस पूरे आंदोलन ने जनता की केवल इतनी चेतना बढ़ायी कि देश से भ्रष्टाचार समाप्त करने के लिए लोकपाल कानून लाना हैं। इसके लिए वे ''मैं अन्ना हूँ'' लिखी हुई टोपी लगा कर सड़कों पर आ गये।

अन्ना के आंदोलन में भीड़ जुटी, लेकिन सोचने की बात है कि राजनीतिक पार्टियाँ रैली करती हैं, भारत बंद का आहवान करती हैं, उनमें भी अत्यधिक भीड़ जुट जाती है, लोग सड़कों पर आ जाते हैं, फिर राजनीतिक पार्टियों द्वारा जुटायी गयी भीड़ और अन्ना के साथ आयी भीड़ में क्या अंतर था। इन दोनों तरह की भीड़ में काफी समानता है और कुछ अंतर भी हैं। रैलियों में जो जनता इकट्ठी होती है वह येन केन प्रकारेण पार्टी कार्यकर्ताओं द्वारा मैनेज की हुई होती है। वह पार्टी का हित साधने के लिए एक टूल की तरह होती है। अन्ना आंदोलन में भी ऐसा हुआ। केजरीवाल की एनजीओ टीम ने ही नहीं भाजपा तक ने अगस्त 2011 (जो इस आंदोलन का सबसे सफल दौर था) में भीड़ इकट्ठी की। लेकिन इसमें एक अंतर था। इस जुटायी की गयी भीड़ में एक हिस्सा वह भी था जो स्वतः स्फूर्त इसमें शामिल हुआ था। उसमें सामाजिक सरोकार की भावना थी। भले ही वह इसी भ्रष्ट व्यवस्था का हिस्सा है, लेकिन उसे लगा था कि इस लड़ाई का दायरा बढ़ सकता है और समाज में कुछ बदलाव आ सकता है। लेकिन केजरीवाल और उनकी एनजीओ टीम इस जनभावना को कुशल राजनीतिज्ञ की तरह अपने हित में इस्तेमाल कर ले गयी।

यह आंदोलन भ्रष्टाचार के विरुद्ध था। इस बात का जबर्दस्त प्रचार किया गया था कि लोकपाल बन जाने से भ्रष्टाचार समाप्त हो जायेगा। केजरीवाल की आम आदमी पार्टी के नेता अभी चैनलों पर यही बात कहते हैं कि अगर लोकपाल बन गया तो सारे भ्रष्टाचारी जेल में होंगे, इसीलिए कोई भी सरकार इतने दिनों से लोकपाल नहीं ला रही है। यह ठीक है कि चालीस साल से अधिक समय गुजरने के बावजूद अभी तक लोकपाल विधेयक पास नहीं हुआ है, लेकिन इस बात का यह मतलब नहीं है कि लोकपाल से भ्रष्टाचार समाप्त हो जाएगा। दरअसल सरकार इस तरह का कोई भी कानून हो वह उसे तब तक टालती है जब तक टाल सकती है और कानून बनाने के बाद सरकार उसे कितना लागू करेगी यह भी तय नहीं है। सूचना का अधिकार कानून इसका एक उदाहरण है जो बनने के दो साल बाद ही निष्प्रभावी हो गया। सरकार ने सूचना का अधिकार कानून भी लम्बी लड़ाई के बाद ही दिया था।

सवाल यह है कि जब लोकपाल विधेयक 27 दिसम्बर 2011 को लोकसभा से पास हो गया और राज्य सभा में पास होना था तो केजरीवाल ने राजनीतिक पार्टी बनाने की घोषणा क्यों की? ठीक है उन्होंने जो जन लोकपाल बिल ड्राफ्ट किया था वैसा लोकपाल नहीं बन रहा था, तो वे जनांदोलन करते, संघर्ष के लिए नयी रणनीति बनाते। क्या उन्हें लगता है कि वे चुनाव में उतर कर बहुमत हासिल कर लेंगे और सत्ता पर कब्जा कर मनचाहा लोकपाल बना लेंगे? अरविंद केजरीवाल भी इतने बेवकूफ नहीं हैं जो ऐसा मुगालता पाल लें। दरअसल वे सत्ता में भागीदारी चाहते हैं और वे अच्छी तरह समझते हैं कि गठबंधन की राजनीति में आज कोई पार्टी पाँच-दस सीट भी निकाल ले तो राजनीति में अपनी कुछ तो हैसियत बना ही लेती है। अन्ना हजारे बार-बार कह भी रहे हैं कि अरविंद की महत्वाकांक्षा ने आंदोलन तोड़ दिया। यह नहीं कहा जा सकता कि केजरीवाल शुरू से राजनीतिक सत्ता में भागीदारी की आकांक्षा पाले थे, परन्तु यह स्पष्ट पता चलता

है कि 2011 का अंत होते होते उन्होंने यह तय कर लिया कि उन्हें सत्ता में भागीदारी चाहिए। शायद अगस्त 2011 के माहौल ने उन्हें इसके लिए प्रेरित किया। उसके बाद फिर लोकपाल एक बहाना बन कर रह गया। वरना प्रधानमंत्री के या सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को लोकपाल में शामिल करने या न करने से कौन सा बड़ा फर्क पड़ना है। आज तक चैनल पर केजरीवाल व मणिशंकर अय्यर के साथ कुछ दूसरे नेता परिचर्चा में शामिल थे। जब लोकपाल के बारे में केजरीवाल से पूछा गया, तो उन्होंने यही कहा था कि बाकी सब ठीक है, लोकपाल में एक ही कमी है, सीबीआई को सरकार के नियंत्रण से मुक्त कर लोकपाल में शामिल कर लिया जाय। अय्यर ने उनसे सवाल किया था कि यह तो बताओ कि यह कैसे किया जा सकता है। दुनिया के सभी देशों में ऐसा है कि देश की सबसे बड़ी जाँच एजेंसी सरकार के नियंत्रण में होती है।

देश में जब एक के बाद एक बड़े-बड़े घोटाले खुल रहे थे और भ्रष्टाचार ने देश की जनता में एक निराशा का भाव भर दिया था, तब तमाम एनजीओ लोकपाल बिल पास कराने व भ्रष्टाचार से लड़ने के लिए सामने आए। यह आश्चर्यजनक भी नहीं है। आज शासक वर्ग ने व्यवस्था में हर जगह एनजीओ की भूमिका तय कर रखी है। जनता को कुछ फौरी सहूलियतें देने से लेकर किसी भी तरह के सुधारवादी काम के लिए एनजीओ अपनी भूमिका निभाते हैं, हालाँकि इसके बदले वे फंड की भारी रकम भी हड़प लेते हैं।

आज समाज में दिन प्रतिदिन आम आदमी की मुश्किलें बढ़ती जा रही हैं। शासक वर्ग के लिए यह जरूरी है कि वह समाज में निरन्तर सुधार का एक भ्रम फैलाये रहे कि समाज को बेहतर बनाने के लिए कुछ किया जा रहा है। इसकी जिम्मेदारी एनजीओ को दे दी गयी है। टीवी चैनलों पर बहस करने से लेकर आंदोलन करने जैसे काम एनजीओ ही कर रहे हैं। जब एक के बाद एक घोटाले सामने आ रहे थे तब तमाम एनजीओ ने महसूस किया कि भ्रष्टाचार समाप्त करने के लिए लोकपाल जैसा कानून बनवाने का अब सही समय आ गया है। ये ही तो मौके होते हैं जब उन्हें अपने आप को समाजसेवक, कल्याणकारी संस्था के रूप स्थापित करने का मौका मिलता है। इसका मुख्य फायदा यह होता है कि इससे उन्हें अपनी छवि बनाने में सुविधा होती है और उसके बाद अपना मुख्य धंधा यानी फंड जुटाने में आसानी हो जाती है। भले ही सूचना का अधिकार कानून बनने के बाद ही निष्प्रभावी हो गया, परन्तु उसने ही अरविंद केजरीवाल को मैग्सेसे दिलवा दिया, निश्चित ही इससे तमाम विदेशी फंडिंग एजेंसियों से उन्हें लाखों डॉलर फण्ड हासिल करने में भी सुविधा मिली होगी।

एनजीओ हमारे लोकतंत्र का पाँचवा स्तम्भ बन गये हैं उन पर शासक वर्ग व पूँजीपतियों को पूरा भरोसा है। आज केजरीवाल और उनकी एनजीओ टीम कुछ भी करे, पूँजीपतियों का उन्हें पूरा सहयोग मिलता है। अप्रैल 2011 में जब अन्ना पहली बार अनशन पर बैठे तो 82,87,668 रुपये (14 अप्रैल टाइम्स ऑफ इण्डिया) इकट्ठे हुए। इनमें से 25 लाख जिंदल एल्युमिनियम, 16 लाख सुरेन्द्र पाल सिंह (उद्योगपति), 5 लाख राम्की और 3 लाख आयशर ने दिये। ऑडिट रिपोर्ट के अनुसार 1 अप्रैल 2011 से 30 सितम्बर 2011 तक इंडिया अंगेस्ट करप्शन (आईएएस) को 2.94 करोड़ का दान (जिसमें

रामलीला मैदान में मिला 1.14 करोड़ रूपये भी शामिल हैं) मिला है। अरविंद केजरीवाल और उनकी टीम ने भ्रष्टाचार के विरूद्ध लोकपाल बनवाने के लिए लड़ाई शुरू की थी। अब वे कह रहे हैं कि वे व्यवस्था बदलने के लिए राजनीतिक पार्टी बना रहे हैं। अगर वे कहें कि देश में समाजवाद लाना चाहते हैं, तब भी पूँजीपति उन पर विश्वास करेंगे।

किसी भी आंदोलन को आगे ले जाने में नेतृत्व की अहम भूमिका होती है। अगर नेतृत्व गलत लोगों के हाथ में है तो कोई आंदोलन सही जगह नहीं पहुँच सकता। नेतृत्वकारियों की ईमानदारी, प्रतिबद्धता व आंदोलन के बारे में सही समझ ही उसे मुकम्मल मुकाम तक पहुँचाती है। इस आंदोलन की नेतृत्वकारी टीम में जो लोग थे उनमें से अधिकांश निजी स्वार्थ के लिये ही उससे जुड़े थे और उनके कोई गहरे सामाजिक सरोकार नहीं थे। अप्रैल 2011 में अन्ना के अनशन के तीन दिन बाद ही बाबा रामदेव का बिना किसी स्पष्ट कारण के अलग हो जाना क्या बताता है? आध्यात्मिक प्रवचन के अलावा रवि शंकर का कोई सामाजिक सरोकार नहीं हैं। यहाँ तक कि अरविंद केजरीवाल, किरण बेदी, मनीष सिसोदिया, शांतिभूषण आदि की भी ऐसी कोई सामाजिक प्रतिबद्धता की पृष्ठभूमि नहीं रही है। अरविंद केजरीवाल ने सूचना का अधिकार कानून बनवाने के लिए कोशिश की थी। इसके अलावा तो उनका कोई सामाजिक सरोकार नहीं है। वे भी ऐसा ही एक एनजीओ चला रहे हैं जैसा दूसरे लोग चलाते हैं। किरण बेदी प्रथम महिला आईपीएस हैं और उन्होंने एक बार इंदिरा गाँधी की गाड़ी उठवा ली थी। वे दो एनजीओ चलाती हैं और उनके ऊपर एनजीओ में भ्रष्टाचार करने के आरोप भी लगे हैं। शांतिभूषण पर भी जमीन की खरीद से सम्बन्धित आरोप लगे हैं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि आज एनजीओ के क्षेत्र में सर्वाधिक भ्रष्टाचार है और ये लोग एनजीओ को लोकपाल के दायरे में लाने के सख्त विरोधी हैं। ऐसा पहली बार हुआ कि एनजीओ जैसे एक भ्रष्ट क्षेत्र से जुड़े लोग महज एक कानून बनवाने के लिये इकट्ठे हुए और मीडिया ने उन्हें क्रान्तिकारी घोषित कर दिया। लोकपाल की माँग को आजादी की दूसरी लड़ाई घोषित कर दिया गया। अगर हम समाज में कोई बड़ा बदलाव करना चाहते हैं तो यह बहुत जरूरी है कि जिसे हम बदलना चाहते है और बदलकर जो हम लाना चाहते हैं उसके बारे में हमारी समझ पूरी तरह स्पष्ट हो। इस पूरे आंदोलन का वैचारिक पक्ष बहुत कमजोर रहा, बल्कि कहना यह चाहिए कि आंदोलन ने अपना कोई वैचारिक पक्ष रखा ही नहीं। समय-समय पर अन्ना गाँव के सामंती सोच रखने वाले मुखिया जैसी सोच प्रकट करते रहे हैं। उन्होंने अपने गाँव रालेगण सिद्धी में जो काम किये हैं वे भी कुछ इसी तरह के हैं। जाति व्यवस्था के मामले में भी वे पिछड़ी और सामंती समझ रखते हैं। वे कभी मोदी की तारीफ करते हैं तो कभी राहुल गाँधी की। हमें आज तक नहीं मालूम कि वे भ्रष्टाचार के बारे में क्या समझते हैं और भ्रष्टाचार किसे मानते हैं।

किरण बेदी और अरविंद केजरीवाल अगर उनकी ही भाषा में कहा जाय तो कुशल नेताओं की तरह बहुत ही शातिर हैं। पहले ये लोग यही कहते थे कि वे भ्रष्टाचार के विरुद्ध लड़ाई लड़ रहे हैं। लोकपाल के बाद वे निर्वाचित प्रतिनिधि को वापस बुलाने का अधिकार

(राइट टू रिकॉल), यदि कोई भी प्रतिनिधि पसन्द न हो तो नकारने का अधिकार (राइट टू रिजेक्ट) की लड़ाई लड़ेंगे। अब, जब केजरीवाल ने अपनी पार्टी बना ली है तब वे कहने लगे हैं कि वे व्यवस्था परिवर्तन की लड़ाई लड़ रहे हैं। उन्होंने एक छोटी सी किताब लिखी है- स्वराज। वे कहते हैं कि यह उनकी पार्टी का घोषणा पत्र है। इस किताब में हद दर्जा बेवकूफी की बातें हैं। यह पुस्तक हमें जमीदारों के युग में ले जाती है। यह पुस्तक ग्राम पंचायतों को मजबूत व शक्ति सम्पन्न करने की बात करती है। यह पुस्तक कहती है कि ग्राम सभाओं को योजनाओं से जोड़कर पैसा न दिया जाय, बल्कि मुक्त फंड के रूप में दिया जाय। गाँव वाले ग्राम सभाएँ करके तय करेंगे कि पैसा कैसे खर्च करना है। इस पुस्तक में पृष्ठ 32 पर लिखा है -

कुछ लोगों का मानना है कि अगर सीधे-सीधे ग्राम सभाओं के लिए मुक्त फंड आएगा तो उसका गलत इस्तेमाल हो सकता है। तो हमने पूछा कैसे गलत इस्तेमाल हो सकता है? तो कुछ लोगों ने कहा कि मान लीजिए ग्राम सभा को तीन करोड़ रुपये ऊपर से आया है और मान लीजिए ग्राम सभा में बैठकर सभी लोग कहें कि हम तीन करोड़ रुपये का कुछ नहीं करेंगे, हम आपस में बाँट कर खाएँगे। तो इसमें क्या बुरा है? ठीक है बाँटकर खा लेने दो। अगर सारा गाँव बैठकर यह निर्णय लेता है कि हम इस पैसे को आपस में बांटकर खाएँगे तो खा लेने दो। अभी इस पैसे को कौन खाता है? अधिकारी खाते हैं, नेता खाते हैं, बीडीओ खाता है, तहसीलदार खाता है, कलेक्टर खाता है, अगर गाँव के सारे लोग मिलकर उस सारे पैसे को बाँट लें तो क्या हर्ज है? सीधे-सीधे जनता तक तो पहुँचेगा पैसा।

पुस्तक में आगे लिखा है - दूसरा दुरुपयोग ये हो सकता है कि सरपंच ग्राम सभा ही न बुलाए। गाँव के लोगों के झूठे हस्ताक्षर कर ले और सारा का सारा मुक्त फंड का पैसा खा जाय। ये बिलकुल हो सकता है। लेकिन आज भी तो यही हो रहा है। भई गाँव में पैसा मुक्त फंड में आए या बिना मुक्त फंड में आये अगर भ्रष्ट सरपंच होगा तो वो तो पैसा खा ही लेगा। अगर योजनाओं में पैसा आता है तो भी वह पैसा खाता है। अगर बिना योजनाओं के पैसा आयेगा तो भी वह पैसा खायेगा। तो सरपंच को तो पैसा खाना ही है।

यह है केजरीवाल का स्वराज। पूरी पुस्तक में ग्राम सभाएँ बनाने की ऐसी ही कहानियाँ लिखी हैं। आगे एक कहानी यह है कि एक बेहद पिछड़े गाँव में गाँव वालों ने एक लड़के को सरपंच बना दिया और उस पढ़े लिखे ईमानदार सरपंच लड़के ने कैसे गाँव की काया पलट कर दी।

केजरीवाल को या तो गाँवों की स्थिति मालूम नहीं है या वे जानबूझ कर मक्कारी कर रहे हैं। अभी ग्राम सभाओं को कोई विशेष अधिकार नहीं है, तब तो जिसकी लाठी उसकी भैंस वाली स्थिति है। केजरीवाल का स्वराज्य आ गया, तब तो गरीब और दलित दबंगों के बंधुआ मजदूर ही हो जाएंगे।

भ्रष्टाचार और उसका समाधान

जहाँ भ्रष्टाचार को लेकर समाज में बहस छिड़ गयी है, वहीं एक बहस यह भी चल रही है कि क्या भ्रष्टाचार से मुक्ति पायी जा सकती है अथवा उस पर नियंत्रण रखा जा सकता है? भ्रष्टाचार के नाम पर पिछले दो वर्षों से जो अनशन प्रदर्शन हुए हैं, उसके बाद यह सवाल और तीखा होकर उभरा है। अरविंद केजरीवाल ने मीडिया व इंटरनेट के जरिए इस बात का काफी प्रचार किया है कि अगर लोकपाल बन जाय तो देश से भ्रष्टाचार खत्म हो जाएगा। सारे नेता और अधिकारी जेल में होंगे। सात साल पहले जब सूचना का अधिकार कानून बना था तब इन्हीं लोगों ने अभियान चलाया था कि अब शासन-प्रशासन में पूरी पारदर्शिता आ जाएगी उसके बाद भ्रष्टाचार सम्भव ही नहीं हो सकेगा। अब यह तो बिल्कुल तय है कि कानून बनाकर भ्रष्टाचार समाप्त नहीं हो सकता। भले ही वह लोकपाल जैसा कानून ही क्यों न हो। भ्रष्टाचार व्यवस्था के मूल में है और वह उसका जरूरी हिस्सा है। कोई भी कानून इस व्यवस्था के अन्दर ही बनेगा और व्यवस्था खुद भ्रष्टाचार के साथ उस कानून का तालमेल बैठा लेगी।

कुछ लोग वर्तमान व्यवस्था से इतने तंग आ गये हैं कि वे समाधान प्रस्तुत करते हैं कि यह देश लोकतंत्र के लिए तैयार ही नहीं हुआ था। उनके हिसाब से अगर देश में तानाशाही हो जाय तो सारी व्यवस्था सुधर जाएगी। लोकतंत्र कितना ही बुरा क्यों न हो पर तानाशाही से तो यह लाख गुना अच्छा है।

कुछ यथास्थितिवादी लोग हैं जो सोचते हैं कि कुछ नहीं बदलने वाला है। समाज में जैसे भ्रष्टाचार चल रहा है वैसे ही चलता रहेगा। भ्रष्टाचार को समाप्त करने के लिए पहले यह समझना होगा कि भ्रष्टाचार क्यों है? भ्रष्टाचार समाप्त करने के लिए पहली चीज तो यह समझनी है कि भ्रष्टाचार व्यवस्था के मूल में है और व्यवस्था में परिवर्तन किए बिना भ्रष्टाचार से मुक्ति सम्भव नहीं है। जैसा कि पहले बताया गया है कि पैसा समाज का सबसे बड़ा मूल्य बन गया है। पैसा सबसे बड़ा साध्य भी है। पैसे का दर्शन है पैसा, और इतना पैसा जिसकी कोई सीमा न हो। तो सबसे पहले हमें यह सोचना होगा कि पैसे के इस दर्शन को कैसे तोड़ा जाय।

जैसा कि हम जानते हैं कि व्यक्ति की मूलभूत जरूरतें हैं- रोटी, कपड़ा, मकान, स्वास्थ्य और शिक्षा। इसके बाद अपना व बच्चों का भविष्य। आज के समय में ये जरूरतें पैसे से ही पूरी होती हैं और वर्तमान व्यवस्था ने व्यक्ति को उसके हाल पर छोड़ दिया है कि अगर उसमें क्षमता है तो जैसे भी हो सके, वह खुद पैसा कमाए और खुद अपनी जरूरतों को पूरा करे। वर्तमान में हर व्यक्ति की अपनी क्षमता के अनुसार पैसा कमाने की एक सीमा है। बिना नियम-कानूनों को तोड़े एक निश्चित सीमा से अधिक पैसा नहीं कमाया जा सकता। एक चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी की तो बात ही छोड़ दीजिए, एक आईएएस अधिकारी भी ईमानदारी से काम करे तो जीवन में

वह मकान बनवाने, बच्चों को अच्छी शिक्षा दिलवाने, अपने परिवार को अच्छी स्वास्थ्य सुविधाएँ दिलवाने के बाद एक मध्यम वर्गीय परिवार से अधिक की हैसियत नहीं बना सकता।

दरअसल राज्य व्यवस्था का यह दायित्व होना चाहिए कि वह अपने नागरिकों की मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करे। स्वास्थ्य व शिक्षा की पूरी जिम्मेदारी सरकार की होनी चाहिए। देश के सभी नागरिकों के लिए समान शिक्षा व्यवस्था होनी चाहिए। निजी शिक्षण संस्थानों पर पूरी तरह रोक होनी चाहिए। इसी तरह स्वास्थ्य सुविधाओं से भरपूर अस्पताल सरकार को खोलने चाहिए। सरकार को यह भी सुनिश्चित करना चाहिए कि क्षमता के अनुसर देश के हर नागरिक को रोजगार उपलब्ध कराए।

पूरी प्रशासनिक व्यवस्था, सरकारी मशीनरी, न्यायपालिका की जवाबदेही तय हो। पूरे सरकारी तंत्र की जवाबदेही तय किए बिना भ्रष्टाचार को रोकना किसी प्रकार भी सम्भव नहीं है। जवाबदेही पूरी न होने की स्थिति में दण्ड का प्रावधान होना चाहिए।

जनता का जो पैसा है उसमें पारदर्शिता होनी चाहिए। जैसे अस्पताल, ब्लॉक, तहसील, जिलाधिकारी कार्यालय में जो बजट आता है उसके बारे में हर माह स्पष्ट होना चाहिए कि कितना बजट आया और वह कैसे खर्च किया गया। कार्यालय के बाहर यह सूचना उपलब्ध होनी चाहिए।

गैर कानूनी तरीके से धन कमाना बड़ा अपराध घोषित किया जाना चाहिए। सरकारी कर्मचारी और व्यवसाइयों को अपनी सम्पत्ति व आय के स्रोत घोषित करने चाहिए। इस बात का कोई मतलब नहीं है कि अवैध सम्पत्ति पर टैक्स वसूल कर उसे कानूनी मान्यता दी जाय। अवैध सम्पत्ति जब्त की जानी चाहिए और भविष्य में ऐसा करने पर सख्त कार्रवाई का प्रावधान होना चाहिए। उसके लिए एक टास्क फोर्स का निर्माण किया जाना चाहिए। इस टास्क फोर्स को सम्पत्ति के बारे में किसी भी व्यक्ति से पूछताछ करने का अधिकार होना चाहिए। किसी भी व्यक्ति की सम्पत्ति के बारे में पूछताछ के लिए किसी को भी अनुमति लेने की जरूरत नहीं होनी चाहिए। टास्क फोर्स को पूछताछ करने का अधिकार होना चाहिए पर इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि वे बिना वजह किसी को उत्पीड़न न करें। देश के नागरिकों की भलाई के बारे में सोचने की पूर्ण जिम्मेदारी राज्य व्यवस्था की होनी चाहिए। एनजीओ और ट्रस्ट चलाने का अधिकार किसी को नहीं होना चाहिए। दरअसल एनजीओ और ट्रस्टों के नाम पर देश में लूट मची हुई है। कुछ अपवादों को छोड़कर ट्रस्ट और एनजीओ के नाम नेता व अधिकारियों के करीबी रिश्तेदार व कुछ शातिर किस्म के लोग जबर्दस्त भ्रष्टाचार में लिप्त हैं। इसका सबसे बड़ा उदाहरण बाबा रामदेव हैं जिन्होंने ट्रस्टों के माध्यम से अरबों-खरबों की सम्पत्ति कुल दस-बारह साल में ही खड़ी कर ली।

धार्मिक भ्रष्टाचार भी कोई छोटा-मोटा भ्रष्टाचार नहीं है। जिसके पीछे भी हजार दो हजार लोग इकट्ठे हो गये हैं, वह अपना गोरखधंधा चला रहा रहा है। यह भ्रष्टाचार सबसे खतरनाक इसलिए है की लोगों कि चेतना को कुंदकर समाज को पीछे ले जाता है। इस गोरखधंधे में जो लूट है वह मामूली नहीं है। जैसे सौ पूँजीपतियों के पास देश की 25 प्रतिशत सम्पत्ति है वैसे

ही 100 बाबा या स्वयंभू भगवानों की सम्पत्ति इकट्ठी कर ली जाय और मंदिरों-मठों की कीमती सम्पत्ति उसमें मिला ली जाय तो उससे पूरे देश की गरीबी दूर हो जाएगी। इसलिए यह बेहद जरूरी है कि धार्मिक भ्रष्टाचार के लिए सख्त कानून होना चाहिए। कोई भी व्यक्ति अगर कृपा बाँटने के बदले पैसा इकट्ठा करता है, यानी धर्म के नाम पर किसी भी तरह की आर्थिक गतिविधि संचालित करता है, तो उस पर रोक होनी चाहिए। चमत्कार करने वालों की जांच होनी चाहिए।

दरअसल हर क्षेत्र में इतना अधिक भ्रष्टाचार है कि कई तरह की जाँच एजेंसियाँ बनाये बिना और पूरी सरकारी मशीनरी में परिवर्तन किए बिना भ्रष्टाचार नहीं रुक सकता। पुलिस और न्यायव्यवस्था में विशेष तौर पर परिवर्तन करने की आवश्यकता है।

जैसा कि हम जानते हैं कि सबसे अधिक भ्रष्टाचार कॉरपोरेट क्षेत्र में है। दरअसल कॉरपोरेट का भ्रष्टाचार पूरे समाज के भ्रष्टाचार को प्रभावित करता है। 1990 के बाद जो खुली अर्थव्यवस्था अपनायी गयी है उसके बाद भ्रष्टाचार के रूप में तमाम तरह के घोटाले सामने आये हैं परन्तु कॉरपोरेट का भ्रष्टाचार उतना ही पुराना है जितना कॉरपोरेट। अगर कॉरपोरेट का भ्रष्टाचार समाप्त हो जाय तो समाज में तमाम तरह के भ्रष्टाचार समाप्त हो जायेंगे। मसलन कॉरपोरेट ही राजनीति व प्रशासन में भ्रष्टाचार का बड़ा कारण है। ये कर चोरी करते हैं। मजदूरों का हक मारते हैं। सरकारों से अपने हक में नीतियाँ बनवाने के लिए उन्हें व पार्टी को चुनाव में चंदा देते हैं। नौकरशाही को नियंत्रित करने के लिए वे करोड़ों रुपये दलालों को देते हैं जिन्हें वे लॉबिस्ट कहते हैं। यानी अपने इन दलालों के माध्यम से कॉरपोरेट राजनीति, प्रशासन, मीडिया आदि तमाम क्षेत्रें को भ्रष्ट करते हैं। दरअसल कॉरपोरेट का अपने पूँजी के सम्राज्य को अधिक से अधिक फैलाने का जो लक्ष्य है, वह इन भ्रष्ट हथकंडों पर ही टिका है। कॉरपोरेट के इस भ्रष्टाचार को व्यवस्था द्वारा खुली छूट मिली हुई है। कॉरपोरेट की इस छूट को किसी कानून से रोका भी नहीं जा सकता। क्योंकि जो भी कानून बनेगा वह इस लूट के साथ समायोजित करते हुए ही बनाया जाएगा।

कॉरपोरेट का भ्रष्टाचार समाप्त करने का एक ही तरीका है कि पूरे कॉरपोरेट जगत का सामाजीकरण किया जाय। उसके बाद उसको सही दिशा में लगाया जाय। यानी अंधधुंध फालतू चीजें बनाने के बजाय सिर्फ वे ही चीजें बनायी जाएँ जिनकी समाज को जरूरत है। यानी चीजें मुनाफा कमाने और कॉरपोरेट साम्राज्य खड़ा करने के लिए न बना कर समाज की जरूरतों के हिसाब से बनायी जानी चाहिए। इससे भ्रष्टाचार ही नहीं, देश की तमाम समस्याएँ भी हल हो जायेंगी। साथ ही लॉबिस्ट जैसे दलालों की जरूरत नहीं रहेगी। राजनीति व प्रशासन और कॉरपोरेट का जो भ्रष्ट गठबंधन है, वह समाप्त हो जाएगा। जब देश की अधिकांश पूँजी पर मुठ्ठी भर लोगों का अधिकार समाप्त हो जाएगा तो देश की 70 प्रतिशत भूखी-नंगी जनता की समस्या हल हो जाएगी। जब गैर कानूनी सम्पत्ति इकट्ठी करना संगीन अपराध बन जाएगा और उसे जब्त करके राजकोश में जमा कर लिया जाएगा तो लोग सम्पत्ति इस तरह इकट्ठी नहीं करेंगे और

करेंगे भी क्यों शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार की जिम्मेदारी राज्य व्यवस्था की होगी। पैसा जो आज के समय में सबसे बड़ा मूल्य बन गया है, वह अपनी सामाजिक हैसियत खो देगा। फिर अच्छे समाजिक मूल्यों की स्थापना हो सकेगी। समाज के समाने भ्रष्ट तरीके से अधिक से अधिक पैसे कमाने का लक्ष्य नहीं रहेगा तो राजकोश की सम्पत्ति समाज के विकास में योगदान दे सकेगी।

यही व्यवस्था परिवर्तन है और बिना इस व्यवस्था परिवर्तन के किसी भी तरह भ्रष्टाचार को नहीं रोका जा सकता। कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि केजरीवाल और रामदेव जैसे लोग लोकपाल और कालेधन की बातें करते-करते इस बात को भी दोहराने लगे हैं कि पूँजीपति इस देश को चला रहे हैं और उनका राजनीति से गहरा सम्बन्ध है। क्योंकि यह बात जग जाहिर है, इसलिए इसे स्वीकारना उनकी मजबूरी है। यही नहीं वे एक और भ्रम फैलाने की कोशिश कर रहे हैं कि वे व्यवस्था परिवर्तन की लड़ाई लड़ रहे हैं, जबकि वास्तव में वे केवल सतही और महज कुछ कानूनी बदलाव की बातें कर रहे हैं। इससे मूल व्यवस्था में कोई अंतर नहीं आएगा। जब तक मूल व्यवस्था यानी कॉरपोरेट के भ्रष्टाचार को समाप्त नहीं किया जाएगा भ्रष्टाचार का यह कारोबार अनवरत चलता ही रहेगा।

यह काम कैसे और कब होगा, यह देश की अधिकांश मेहनतकश जनता की चेतना, राजनीतिक सक्रियता, संगठन और संघर्ष पर निर्भर है। लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं कि इस समस्या का कोई सतही समाधान नहीं हो सकता।